





श्री उमास्वामीविरचित-

तत्त्वार्थसूत्र

अर्थात्

मोक्षशास्त्र सटीक ।

अनुवादक—

श्री० य० वनालालजी माहित्याचार्य, सागर ।

प्रकाशक—

मूलचंद विमनदास कापडिया,

मालिक, दिगम्बरजैनपुस्तकालय,

गांधीचौर, कापडियामदन-सुरत ।

प्रथमावधि ]

धारा नं० १२६७

[ प्रति १००० ]

[ सर्वे हक स्वधान ]

“ जनविजय ” प्रिन्टिंग प्रेस सुरतम मूलचंद विमनदास

कापडियान मुद्रित किया ।

मूल्य-चारह आने ।



## निवेदन ।

सार जन मिद्धा नका मार यति किमी गाम्बन गे ले सः श्री उमास्वामी सूत्र-तत्त्वार्थ सूत्र यानि मोक्षशास्त्रमें है । तथा इमर राज-वार्तिक, श्लोकवार्तिक, अर्थप्रकाशिका, मन्त्रार्थसिद्धि, तन्त्रार्थसार आदि आसः टीकाए मस्कृत व हिन्दी भाषाम प्रकट हो गई है जोग विद्यार्थियोंक पठन पाठनक लिये उनकी टीका स० मालत्र० प० पन्नालालजी राकलीपालन कोड ३०-४० वर्षे हुए की बी जो अच्छी है व आपनक प्रचलित है लेकिन उसम कई प्रकारकी त्रुटिया इनम विद्यार्थियोंको समझनम व ज यापकोंको समझानम कठिनाई पढ़नी थी । अन तम मिद्धातशास्त्रक एक एस अनुवादकी आवश्यकता थी जो विद्यार्थियोंको अधिक सुगम हो तथा जिसम उनके मिद्धातोंको समझनक लिये आवश्यक चित्र व चार्ट-नकश ना गों निम्की प्राप्त पद्यस्तोत्र सग्र, रजकण्ड ध्यानकाचार आदिक अनुवादक-त्री प० पन्नालालजी माहित्याचार्य-सागरने कर नी है । आपन तम शास्त्रका अनुवाद भी पद्यस्तोत्र सग्रकी तरह जनररी तौरस-मना-भास ही अतएव परिश्रमपूर्वक कर दिया है निम्क लिय हम व सारा जन समान आपका अत्यन्त आभारी रहगा ।

**निशेषता—**मोक्षशास्त्रक इम अनुवादमें विद्यार्थियोंकी सु-लियनक लिये कई नकश व चार्ट तो लिय ही हैं लेकिन उनके अनिम्कि इम ग्रन्थगजक कता श्री उमास्वामीजीका जीवनपरिचय व

वनी विषयमूची भां स्व दी है तथा अन्तम 'लक्षणमप्रह' भी अकारान्ति क्रमम रखा गया है (चिमस जेन सद्वांतिक कोई भी शब्दका अर्थ द्रव्यनम दग नहीं लगगी) और विद्यार्थीगण अपनी परीक्षाकी तैयारी मुगमतास कर सकू इसलिय प्रत्यक अध्यायक अतम प्रश्नावली रख दी गई है तः। तानवीर माणिकचद दिगम्बर जेन परीक्षालयका ओर भा० दि० जन परिपद परीक्षालयका एक २ प्रश्नपत्र भी जोड दिया गया है ।

वास्तवम अत्र यं शास्त्र विद्यार्थियोंक लिय अनीव उपजागी होगया हे तथा स्वजात्र प्रेमियोंक लिय भी यं उपयुक्त हांगा । एस प्र-  
राजको टीका निम्नाश्रमभासम कर तनवाल प०पत्रालालनी साहित्याचार्य मण्देयका हन एकर फिम आमार मानकर यं आशा रगत ह कि सभी विद्यालय पाठशाला, स्कूल, गुरुकुल आश्रम आदिक मचालक अत्र भोपशास्त्रकी इस मुगम टीकाको ही अपनी सम्धार्योम स्थान देंग ।

इस मचित्र टीकाकी प्रुष्ट सान्या भां उतुत न गइ हे तथा महा-  
युद्धक कारण कामन्की महगांका पारावार नहीं है तौभी हमने इसका मून्य विद्यार्थियोंका मुन्वित्यनक लिये सिर्फ पारह आन ही रखा हे ।  
अन आशा हे कि सब विद्यार्थीगण व स्वाध्यायप्रेमी भाट टरुका ऐसा हाम उठावेंग कि इस शीघ्र ही इसकी दूसरी आवृत्ति प्रकट करनका मौका प्राप्त होमक ।

मूलत  
परम ४ ३  
आप न वनी ४  
ता० १३-१-४३

निपत्र—  
मूलचद निमनदाम कापडिया  
—प्रकाशक ।

## समर्पण ।

‘स्याडात्प्राचस्पति’ ‘मिद्धान्तशास्त्री’ न्यायनीय  
पण्डित दयाचन्द्रनी शास्त्री, प्रजानाध्यापक  
आ सन ३० दि० जैन विद्यालय—सागर

—३—

पूर्वत मेवामे अनुज्ञादत्र द्वारा  
यह ग्रन्थ  
सादर समर्पित किया  
जाता है ।

भारती भवन  
सागर  
ता ३-६-१०४१

भद्रदुपकारविनन -  
पद्मालाल जैन ।



## अनुवादकके दो शब्द ।

‘तत्त्वार्थमूत्र’ जेनागम अत्यन्त प्रसिद्ध शास्त्र है । इसकी रचनागलीने तत्कालिक तथा उमरु वाक्य समस्त विद्वानोंको अपनी ओर आकृष्ट किया है । यही कारण है कि उमरु उग्र पृथ्वरत्न, अकलङ्कस्वामी तथा विद्यानन्दी आदि आचार्यों महाभाष्य रच है । तत्त्वार्थमूत्र विषय तरह त्रिगम्बर आज्ञायम सर्वमान्य है उसी तरह श्वनाम्बर आज्ञायम भी सर्वमान्य है । त्रिगम्बर सम्प्रदायम इसक कतका ‘उमाम्बामी’ ओर श्वनाम्बर आज्ञायम ‘उमाम्वाति’ कहत है ।

हम सुकुमारमति बालकोंका ‘त’ और ‘म’ क शब्दम न डालकर केवल ग्रन्थ प्रतिपादित विषयम परिचित कराना चाहते हैं ।

इस ग्रन्थमें आचार्य उमाम्बामीन पथमान्न समारी पुरुषोंको मोक्षका मत्ता मार्ग बतलाया है—‘सम्यग्दर्शनानुचरित्राणि मोक्षमार्ग’ अबत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता ही मोक्षका मार्ग है । मोक्षमार्गका प्ररूपक होनेक कारण ही इसका दूसरा नाम ‘मोक्षशास्त्र’ भी प्रचलित हो गया है । मोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका इस ग्रन्थम त्रिगम्बर विरचन किया गया है ।

प्रथम अध्यायम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका विरचन है । दूसरे अध्यायम सम्यग्दर्शनक विषयभूत जीवनत्वक असाधारण भाव, लक्षण,



# मोक्षशास्त्रके रचयिता—

## —श्री उमास्वामीजी ।

आचार्यप्रवर उमास्वामीका नाम 'तत्त्वार्थसूत्र' नामक ग्रन्थके कारण अत्र अमर है । यह ग्रन्थ जेनोंकी 'शास्त्रिल' है और सूत्री यह कि मन्वन्त भाषाम सबसे पहला बना जो ग्रन्थ है । सचमुच आचार्य उमास्वामी ही जन सिद्धातका प्राग्जन्म सम्वृत भाषाम प्रकट करनेका श्रीगणेश किया था और फिर तो इस भाषाम अतकानक जेनाचार्यांन ग्रन्थ रचना की ।

श्री उमास्वामीकी मान्यता जोंक दोनों सम्प्रदायों—विश्वम्बर और श्वेताश्रम समान रूपसे है । और उनका 'तत्त्वार्थसूत्र' ग्रन्थ भी दोनों सम्प्रदायोंमें श्रद्धाकी दृष्टिसे दया जाता है ।

किंतु इस प्रन्धान आचार्यके जीवनकी घटनाओंका ठीक हाल जान नहीं है । श्वेताश्रमय शास्त्रास यह जन्म प्रित्तित है कि न्यग्रो यिका नामक नगरीमें उमास्वामिका जन्म हुआ था । उनका पिताका नाम श्याति और माताका नाम वात्मी था । वह कौमीषणी गोत्रक था, निमम उनका ब्राह्मण या शूरी होना प्रगट है । उनका दीक्षागुरु गारह जगक धामक घाषनन्ति क्षमण थ जाग पित्राप्रहणकी दृष्टिस उनका गुरु मूत्र नामक वाचकाचाय । उमास्वामि भी वाचक कहलान थ और उहान 'तत्त्वार्थसूत्र' की रचना तुमुमपुर नामक नगरमें की थी ।

दिगम्बर शालोम उनक गृहस्थ जीवनका कुछ भी पता नहीं चरता है। साधु रूपम व श्री सुद्रुत्ताचार्यक पट्ट शिष्य बनाय गये है आर श्री 'तत्त्वार्थसूत्र'की रचनाक प्रियम कहा गया है कि मोराष्ट देशक मध्य ऊर्जावनगिरिक निकट गिरिनगर नामक पत्तनम आमत्र भन्व स्वहितार्थी द्विचतुलोलपत इतताम भक्त 'मिद्वय्य नामक एक विद्वान स्वताम भक्त अनुकूल सरल शास्त्रका जाननवाला था उन दर्शननानचारित्राणि मोक्षमार्ग' यह एक सूत्र बनाया ओर उस एक पाटियेपर लिग्न छोडा। एक समय चर्च श्री गृहपिण्डाचार्य 'उमा-स्वामी नामके धारक मुनिम वहापर आए और उन्हान आहार उनक पश्चान् पाटियोको देखकर उमम उक्त सूत्रक पत्र 'मम्यक्' शब्द जोड लिया।

जम वह सिद्धय विद्वान वहास अपन घर जाये ओर उन प्रमत्त होकर अपनी मातास पृछा कि, किस महानुभावन य् शब्द लिग्न है? मातान उत्तर दिया कि एक महानुभाव निर्ग्रन्थाचार्यन यह बनाया है। इसग व गिरि और अरण्यको दृढता हुआ उनक शाश्रमम पहुचा ओर भक्तिभासे नम्रीभूत होकर उक्त मुनिमहागत्स पृछन लगा कि आत्माका हित क्या है? मुनिगजन कहा—'माध' हे। इमपर मोक्षका स्वरूप और उमकी प्राप्तिका उपाय पृछा गया, जिमक उत्तर-रूपम ही इस ग्रन्थका अस्तार हुआ है। श्री कागण इम ग्रन्थका अप नाम 'मोक्षशास्त्र' भी है। कैमा श्रद्धा व ममत्र था, जम दिगम्बर और इतताम आपमम प्रेमम रहने हुए धमप्रभासनाक कार्य कर रहे, उनका उपासक मिद्वय्यक लिय एक

शास्त्ररचना करना अभी वास्तव्यभावका शोक्त है । यह निर्ग्रन्थाचार्य  
की उमास्वामीः अतिरिक्त और कोई न था ।

अमर अतिरिक्त धर्म और सघन लिये उनसे क्या क्या किया,  
यह ठुठ पान नहीं होना । इस कारण उन महान् आचार्यः विषयम  
दम मशिक्ष वृत्तात्तम ही सतोष धारण करना पडता है । त्रिगम्बर  
सम्प्रदायम वः प्रतिमधुर ' उमास्वामी ' और श्वताम्बर सम्प्रदायम वः  
' उमास्वामि ' क नामस प्रसिद्ध है ।

—भा० कामताप्रसादजी कृत " वीर पाठावलि " से ।



# विषय-सूची ।

विषय	अध्याय	सूत्र	विषय	अध्याय	सूत्र
मोक्षकी प्राप्तिका उपाय	१	१	भवप्रत्यय अवधि		
सम्यग्दर्शनका लक्षण	१	२	ज्ञानक स्वामी	१	१
सम्यग्दर्शनक भेद	१	३	क्षमोपशम निमित्तक		
सात नत्व	१	४	अवधिज्ञानक भद		
चार निश्रेय	१	५	और स्वामी	१	२२
सम्यग्दर्शन आदिक			मन पयय ज्ञानक भद	८	२३
ज्ञाननक उपाय	१	६ से ७-८	ऋजुमति और त्रिपुल		
सम्यग्ज्ञानक भद प्र नाम	१	९	मतिम अन्तर	१	२४
प्रमाणका स्वरूप	१	१०	अत्रि और मन पयय		
पराश्र प्रमाण	८	११	ज्ञानम विष्णवता	१	२५
प्रत्यक्ष प्रमाण	१	१२	मति और श्रुतज्ञानका		
मतिज्ञानक दूसरे नाम	१	१३	विषय	८	२६
मतिज्ञानकी उत्पत्ति,			अवधिज्ञानका विषय	१	२७
कारण व स्वरूप	१	१४	मन पयय ज्ञानका विषय	१	२८
मतिज्ञानक भद	१	१५	फलज्ञानका विषय	१	२९
अवग्रह आदिक विषय			एकमाथ कितने ज्ञान		
भूत पदार्थ	१	१६	होसक्त है ?	८	३०
बहुआदि भद पदार्थक	८	१७	मति श्रुत और अत्रि		
अवग्रहम विशेषता	१	१८-१९	ज्ञानम मिथ्यापन	८	३१
श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति,			मिथ्याट्टिका ज्ञान		
क्रम व भद	८	२०	मिथ्याज्ञान है,		
			इसमें युक्ति	१	३२

विषय	अध्याय	सूत्र	विषय	अध्याय	सूत्र
नयान भ०	१	३३	इन्द्रियात् स्वामी	२	२०-२३
<u>ग्रन्थान्तली प्रथम अध्याय ।</u>			समनस्कृती परिभाषा	२	२४
चीरञ्ज अमाधारण भाव०	१		त्रिप्रहगतिका उणत्	२	२५-३०
औषगमिश्रादि भावोंक			चन्मर भद्	२	३१
भदासी गणना	२	२	योनिर्योक्त भद्	२	३२
औषगमिक भावञ्ज भ०	२	३	गभ चमञ्ज स्वामी	२	३३
श्रायिकभावञ्ज भ०	२	४	उपपाद जमञ्ज स्वामी	२	३४
श्यायापशमिञ्ज भद्	२	५	समूच्छन्त जन्मञ्ज स्वामी	२	३५
जौद्विञ्जभावञ्ज भ०	२	६	शरीरोंक नाम व भद्	२	३६
पारिणामिकभावञ्ज भद्	२	७	शरीररक्षा विगप उणत्	३७-४४	
चीरका लक्षण	२	८	औदारिक शरीरका लक्षण	२	४५
उपयागञ्ज भ०	२	९	वैद्विञ्जका लक्षण	२	४६-४७
जीवञ्ज भ०	२	१०	तत्स शरीर भी ऋद्धि		
ससारी चाराञ्ज भद्	२	११	निमित्तक होना है	२	४८
"	२	१२	आहारक शरीरका लक्षण		
म्यारर जीराञ्ज भद्	२	१३	व स्वामी	२	४९
त्रम चीराञ्ज भद्	२	१४	लिङ्गञ्ज स्वामी	२	५०-५३
इन्द्रियासी गणना	२	१५	अकाल मृत्यु चिन्की		
इन्द्रियाञ्ज मूल भद्	२	१६	नहीं होता ?	२	५३
त्रयन्द्रियका स्वरूप	२	१७	<u>ग्रन्थान्तली-द्वितीय अध्याय ।</u>		
भाषात्रियका स्वरूप	२	१८	सात नरक	३	६
पांच इ त्रयोञ्ज नाम	२	१९	नरकाम चिलाकी मर्या	३	७
पांच इ त्रयोञ्ज विषय	२	२०	नारकियाञ्ज टु स्वका वर्णन	३-५	
मनका वैषय	२	२१	नारकियाञ्जकी उत्कृष्ट आनुष्ठ		६

विषय	अध्याय	सूत्र	विषय	अध्याय	सूत्र
कुछ द्वीर समुद्रों का नाम	३	७	आगर क्षेत्र और		
झाव और समुद्राका			परिनोका विस्तार	३	२१
विस्तार और आकार	३	८	विन्द्ह क्षेत्र का आग परत		
उम्बूनीपका विस्तार	२	९	और क्षेत्रों का विस्तार	३	२६
सान क्षत्रों का नाम	३	१०	भारत और परावत क्षत्रम		
कुणवनों का नाम	३	११	कालका परिवर्तन	२	२७
कुणवलाका वर्ण	३	१२	अन्य मूर्तियों की - यवस्था	३	२८
कुणवलाका आकार	३	१३	हैमवतक आदि क्षेत्रों में		
सरावरीका वर्णन	३	१४	आयु की - यवस्था	३	२९
प्रथम सरोवर की लम्बाई			द्वैरणवतक आदि क्षेत्रों में		
चौड़ाई	३	१५	आयु की व्यवस्था	३	३०
प्रथम सरोवर की गहराई	३	१६	विन्द्ह क्षेत्र में आयु की		
प्रथम सरोवर का कमलका			- यवस्था	३	३१
वर्णन	३	१७	भारत क्षेत्र का प्रसार		
महावज्र आदि सरोवर तथा			न्तर में विस्तार	३	३२
उनमें रहनेवाले कमलका			घातकी रण्डका वर्णन	३	३३
वर्णन	३	१८	पुष्करार्थका वर्णन	३	३४
कमलों में रहनेवाली छद्म			मनुष्य क्षेत्र	३	३५
त्रियों	३	१९	मनुष्यादि मद्र	३	३६
चौह महानदियाँ नाम	३	२०	कमभूमिका वर्णन	३	३७
नदियों का वर्णन का क्रम	३	२१	मनुष्यों की उत्पत्ति और		
महानदियों की सहायक			जघन्य स्थिति	३	३८
नदियाँ	३	२२	तियर्थाकी उत्पत्ति	३	३९
भारत क्षेत्र का विस्तार	३	२४			

प्रश्नानुली तृतीयाध्याय ।		शिव	अथ	सूत्र
		वैमानिक द्वागम उत्तरा		
		त्तर हीनता	४	२१
द्वागम भेद	४	वैमानिक द्वागम		
भयनत्रिक द्वागम		लक्ष्याका वर्णन	१	२२
लक्ष्याका विभाग	४	कन्वसज्ञा कर्हातर है ?	४	२३
चार निशायक प्रभेद	१	लोकान्तर द्वागम		
चार प्रकारक द्वागम		निवास और नाम	४	२५-२५
सामान्य भेद	१-१	अनुदिग तथा अनुत्तरवासी		
द्वागम मन्त्राकी व्यवस्था	१	द्वागम अन्तारका नियम	१	२६
मन्त्रोंम स्त्रीमुग्धा वर्णन	४-५	नियम की है ?	४	२७
भयनवासी द्वागम	१०	भयनवासी द्वागम		
भेद	१	उत्कृष्ट आयु	५	२८
व्यन्तर द्वागम	८ भेद	वैमानिक द्वागम		
ज्यातिपी द्वागम	५ भेद	उत्कृष्ट आयु	४	२९-३०
ज्यातिपी द्वागम निशय		मन्त्रोंम जघन्य आयुका		
वर्णन	४	वर्णन	४	३३-३४
वैमानिक द्वागम वर्णन	४	रागकियोंकी जघन्य		
वैमानिक द्वागम भेद	४	आयु	४	३५-३६
कल्पना स्थितिक्रम	४	भयनवासियाकी		
स्वग आदि नाम	४	जघन्य आयु	४	३७
ग्रन्थक और अनुदिशोंक		व्यन्तराकी	४	३८
नाम	४	व्यन्तराकी उत्कृष्ट आयु	४	३९
वैमानिक द्वागम उत्तरा		ज्योतिषियाकी	४	४०
त्तर अधिभूता	४	जघन्य आयु	४	४१
		लौकान्तर द्वागमकी आयु	४	४२

## प्रश्नावली चतुर्थ अध्याय ।

विषय	अध्याय	पृष्ठ
अनीशस्तिकाय	५	१
श्याकी गणना	५	२-३९
श्याकी विगणना	५	४-७
श्याकी प्रदर्शिका		
वर्णन	५	८-११
श्याकी रहनका		
स्थान	५	१२-१६
श्याकी उपकारका		
वर्णन	५	१७-२२
पुद्गलका लक्षण	५	२३
पुद्गलकी पयाय	५	२४
पुद्गलक मेद	५	२५
एक घोंकी उत्पत्तिक		
कारण	५	२६-२८
श्याका लक्षण	५	२९
सत्का लक्षण	५	३०
नित्यका लक्षण	५	३१
एक ही घममे विरुद्ध		
घमोंका समन्वय	५	३२
परमाणुओंमें बाध		
होनेका घणन	५	३३-३४
द्रव्यका प्रकारान्तरसे		
लक्षण	५	३५

विषय	अध्याय	पृष्ठ
कालद्रव्यका वर्णन	५	३९-४०
गुणका लक्षण	५	४१
पयायका लक्षण	५	४२

## प्रश्नावली पञ्चम अध्याय ।

योगके भेद व स्वरूप	६	१
आत्मवका स्वरूप	६	२
योगक निमित्तमे		
आत्मवक भेद	६	३
स्वामीकी अपक्षा		
आत्मवक भेद	६	४
साम्परायिक आत्मवक		
भेद	६	५
आत्मवकी विभिन्नता		
कारण	६	६
अधिकरणक भेद	६	७
जीवादिभेद	६	८
अजीवादिभेद	६	९
ज्ञानवग्न लक्षण		
कारण	६	१०
अज्ञानक स्वरूप		
कारण	६	११
अज्ञानक स्वरूप		
कारण	६	१२
अज्ञानक स्वरूप		
कारण	६	१३
अज्ञानक स्वरूप		
कारण	६	१४
अज्ञानक स्वरूप		
कारण	६	१५



विषय	अध्याय	सूत्र	विषय	अध्याय	सूत्र
नरक आयुका आस्रव	६	१५	हिंसादि पांच पापोंक		
तिर्यञ्च आयुका	"	१६	त्रिपथमे करन		
मनुष्य आयुका	"	१७	योग्य विचार ७	९-१०	
सब आयुजाका			निरन्तर चिन्तवन करने		
सामान्य	"	१९	योग्य भावनाए ७	११	
देव आयुका	"	२०	स नार और शरीरक		
अशुभ नामकर्मका			स्वरूपका विचार ७	१२	
आस्रव	६	२२	हिंसा पापका लक्षण	७	१३
शुभ	"	२३	झूठ पापका	"	१४
तीर्थकर	"	२४	चोरीका	"	१५
नीचगोत्रका	"	२५	कुञ्जीलका	"	१६
उच्च गोत्रका	"	२६	परिमहका	"	१७
अमतरायका	"	२७	प्रतीकी विनापता	७	१८
			प्रतीके भेद	७	१९
			अगारीका लक्षण	७	२०
			सात शीलव्रत	७	२१
			सहेरपना धारण करनेका		
			उपदेश ७	२२	
			सम्यग्दर्शनक ५ अतिचार ७	२३	
			५ व्रत और ७ शीलके		
			अतिचारोंकी सरया ७	२४	
			अहिंसाणुव्रतके		
			अतिचार ७	२५	
			सत्याणुव्रत	"	२६
			अचौर्याणुव्रत	"	२७
			ब्रह्मचयाणुव्रत	७	२८

प्रदानाली पट्ट अध्याय ।

व्रतका लक्षण	७	१
व्रतक भेद	७	२
व्रतोंकी स्थिरताक		
कारण ७	३	
अहिंसाव्रतकी पांच		
भावनाए ७	४	
सत्य व्रतकी	"	५
अचौर्य	"	६
ब्रह्मचय	"	७
परिमहत्यागव्रतकी,	७	८

विवरण	अध्याय	सूत्र	विषय	अध्याय	सूत्र
परिग्रहपरिमाणु			आयुर्कर्मके ४ भेद	८	१०
ब्रह्मक अतिचार	७	२९	नामकर्मके ४२ भेद	८	११
दिग्ब्रह्मक	"	३०	गोत्रकर्मके २ भेद	८	१२
देशब्रह्मक	"	३१	अन्तरायके ५ भेद	८	१३
अनर्थदण्ड ब्रह्मक	"	३२	ज्ञाना० दर्शना० षट्		
सामायिक शिक्षाब्रह्मक			नीय और अन्तरायकी		
अतिचार	७	३३	उत्कृष्ट स्थिति	८	१४
प्रोषणोपवास	"	३४	मोहनीयकी	"	८
उसमोगपरिमोगपरिमाण			नाम और गोत्रकी	"	८
ब्रह्मके अतिचार	७	३५	आयु कर्मकी	"	८
अतिथिसविभाग	"	३६	घृणीयकी जघन्य	"	८
संज्ञेयना	"	३७	नाम और गोत्रकी	"	८
दानका लक्षण	७	३८	शेष कर्मोंकी	"	८
दानकी विशिष्टता	७	३९	अनुभव षडका लक्षण	८	२१-२२
प्रश्नावली मसम अध्याय ।			फल द चुकनके बाद		
बधक कारण	८	१	निर्जरा	८	२३
बधका स्वरूप	८	२	प्रदेशबन्ध	८	२४
बधके भेद	८	३	पुण्यप्रकृतियाँ	८	२५
प्रकृतिबधके मूलभेद	८	४	पापप्रकृतियाँ	८	२६
प्रकृतिबधके उत्तरभेद	८	५	प्रश्नावली अष्टम अध्याय ।		
ज्ञानावरणके पाँच भेद	८	६	सवरका लक्षण	९	१
दर्शनावरणके ९ भेद	८	७	सवरके कारण	९	२-३
वेदनीयके २ भेद	८	८	शुक्तिका लक्षण	९	४
मोहनीयके २८ भेद	८	९	समितिके भेद	९	५

Digitized by



श्रीवीतरागाय नमः।

श्रीउमास्वामीविरचित-

# मोक्षशास्त्र सटीक ।

## प्रथम अध्याय ।

मङ्गलाचरण-

दश-वात्यदन-हिम गिरि निष्कसि, पैंगी जो जग रङ्ग ।  
नय तरङ्ग युत गङ्ग वह धाले पाप अमङ्ग ॥

मोक्षप्राप्तिका उपाय—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग \* ॥ १ ॥

अर्थ—(सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र य तीनों मिलकर (मोक्षमार्ग) मोक्षक मार्ग अथत् मोक्षकी प्राप्तिक जाय है ।

सम्यग्ज्ञान—सग्ये विपर्यय और अनर्थवसायरहित जीवादि पदार्थोंका जानना सम्यग्ज्ञान कहलाता है ।

सम्यक्चारित्र—मिथ्यादर्शन कषाय, तथा हिंसा आदि

\* 'मोक्षमार्ग' इस पदम वाक्यरूप नियमक अनुसार सुबुद्ध होना चाहिये या पर आचार्यने एकरचन ही रखा है उम्मे सूक्ति द्या है कि सम्यग्दर्शन आदि तानोंका मिलना ही मध्यम मार्ग है ।

१-अभिधन ज्ञान अथत् सोप है या चारी । २-उच्य ज्ञान अथत् रस्सीमें सोपका ज्ञान । ३-अभिधन तथा विकल्परहित ज्ञान अथत् सम्यक् चारित्र्य छुट्टे छुट्टे वृत्त फलपर बगैरहने कुछ है इस प्रकारका

समारक कारणोंमें विवक्त होना सम्यक्चारित्र कहलाता है। सम्यग्दर्शनका लक्षण आगेके सूत्रमें कहते हैं ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शनका लक्षण—

तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥

अर्थ—( तत्त्वार्थश्रद्धानम् ) तत्त्व वस्तुक स्वरूपमहित अर्थ—जीवादि पदार्थोंका श्रद्धान करना ( सम्यग्दर्शनम् ) सम्यग्दर्शन [ अस्ति ] है ।

भावार्थ—चौथे सूत्रमें कहे जानेवाले जीव आत्ति सात तत्त्वोंका जैसा स्वरूप वीतराग—मर्षन भगवानन कहा है उसको उभीप्रकार श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है । यह व्यवहार सम्यग्दर्शनका लक्षण है ॥२॥

सम्यग्दर्शनक, उत्पत्तिकी अपेक्षा भेद—

तन्निर्मादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥

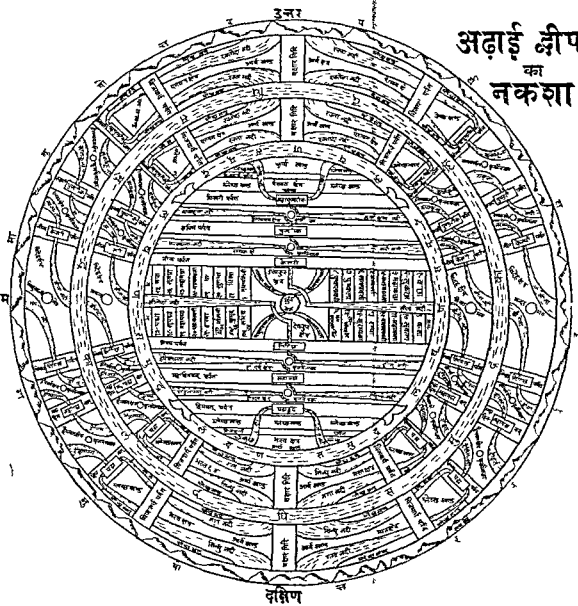
अर्थ—( तत् ) वह सम्यग्दर्शन ( निर्मात् ) स्वभावसे ( वा ) अथवा ( अधिगमात् ) परक उपदेश आदिसे [ उत्पद्यते ] उत्पन्न होता है । इसप्रकार सम्यग्दर्शनक उत्पत्तिकी अपेक्षा दो भेद हैं— १ निर्माण, २ अधिगमन ।

निर्माण—जो परक उपदेशक विना अपन आप ( पूर्वभवके सम्कारसे ) उत्पन्न हो उसे निर्माण सम्यग्दर्शन कहते हैं ।

अधिगमन—जो परक उपदेश आदिसे होता है उस अधिगमन सम्यग्दर्शन कहते हैं\* ॥ ३ ॥

\* उक्त शब्दोंमें मित्यान्व, सम्यग्मित्यान्व सम्यग्प्रवृत्ति और अन्वयानुबन्धी मध्यमोक्त मायाशक्तम इत्यन्वित स्वसमवृत्तियोंका उपपत्तम्, सर्वत्रायंता श्रद्धाप्रसंगिकी शान्ति मानस्यन है ॥ १ २ ३ ४ ५ ॥ १ ॥

# अढ़ाई द्वीप का नकशा



दक्षिण

समागके कारणोंसे विरक्त होना सम्यक्चारित्र कहलाता है। सम्यग्दर्शनका लक्षण आगेके सूत्रमें कहने हैं ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शनका लक्षण—

**तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥**

अर्थ—( तत्त्वार्थश्रद्धानम् ) तत्त्व वस्तुक म्यरूपमहित अर्थ—जीवादि पदार्थोंका श्रद्धान करना ( सम्यग्दर्शनम् ) सम्यग्दर्शन [ अस्मि ] हे ।

भावार्थ—चौथे सूत्रमें कहे जानेवाले जीव आदि सात तत्त्वोंका जैसा म्यरूप वीतराग—मर्मन भगवानन कहा है उसको उसीप्रकार श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है । यह त्रयद्वार सम्यग्दर्शनका लक्षण हे ॥२॥

सम्यग्दर्शनके, उत्पत्तिकी अपेक्षा भेद—

**तन्निर्मादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥**

अर्थ—( तत् ) वह सम्यग्दर्शी ( निर्मात् ) स्वभावसे ( वा ) अथवा ( अधिगमात् ) परक उपदेश आदिस [ उत्पत्तये ] उत्पन्न होता है । इसप्रकार सम्यग्दर्शनक उत्पत्तिकी अपेक्षा दो भेद हैं— १ निर्मात्, २ अधिगमज ।

निर्माज—जो परक उपदेशक विना अपने आप ( पूर्वभयके सम्कारसे ) उत्पन्न हो उसे निर्माज सम्यग्दर्शन कहते हैं ।

अधिगमज—जो परक उपदेश आदिस होता है उस अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं\* ॥ ३ ॥

\* उन ज्ञानों मेंमें मित्यात्, सम्यग्मित्यात् सम्यक्प्रकृति और अनन्तानुबन्धी प्रथम मान माया। साध शून्य सात (कर्मप्रवृत्तियोंका) उपनाम स्वर्ग भयवा। स्वयंप्रकाश होना प्रतीतिप्रक है ॥ ३ ॥ १ ॥ १ ॥

तत्त्विके नाम—

जीवा जीवास्रवत्रन्धमवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥

अर्थ—(जीवानीवास्रवत्रन्धमवरनिर्जगमोक्षा) जीव, अजीव आस्रव, त्रन्ध, मवर, निर्जग और मोक्ष ये मान (तत्त्वम्) तत्त्व [सन्ति] हैं ।

जीव—निमम ज्ञानदर्शनरूप चेतना पाइ नाथे उसे जीव कहते हैं ।

अजीव—निममें चेतना न पाइ जाय उम अजीव कहते हैं ।

आस्रव—त्रन्धक कारणसे आस्रव कहते हैं ।

त्रन्ध—आत्माक प्रदोषों साथ कर्मोंका दूध पानीकी तरह मिलजाना सो त्रन्ध है ।

मवर—आस्रवक रकनको मवर कहते हैं ।

निर्जग—आत्माके प्रदोषोंस पहरेक त्रन्धे हुए कर्मोंका एक-देश क्षय होना सो निर्जग है ।

मोक्ष—समस्त कर्मोंका त्रिलकुल क्षय होजानेको मोक्ष कहते हैं \* ॥ ४ ॥

सात तत्त्व तथा सम्यग्दर्शन आदिके व्यवहारके कारण—

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्याम. ॥ ५ ॥

अर्थ—( नामस्थापनाद्रव्यभावत ) ज्ञान, स्थापना, द्रव्य

\* इसी सात तत्त्वोंम पुण्य और पाप मिट देनेके उद्देश्य होकर है । यहाँ उनका आस्रव और त्रन्धमें अन्तर्भाव दर्शनेके ज्ञान कथन नहीं किया ।



और भास (तत् न्याम ) उन सात तर्कों तथा सम्यग्दर्शन आत्तिका लोकयन्त्र [ भवति ] होता है । नाम आत्ति चार पदार्थ ही चार निक्षेप कहलाते हैं ।

नामनिक्षेप—गुण, जाति, द्रव्य और क्रियाकी अपेक्षाके बिना ही इच्छानुसार किमीका नाम रखनेको नामनिक्षेप कहते हैं । जैसे किमीका नाम 'चिन्तित' है । यद्यपि वह जिनद्वयक द्वारा नहीं दिया गया है तथापि लोकयन्त्र पर चलानके लिये उसका चिन्तित नाम रखलिया गया है ।

स्थापनानिक्षेप—धातु काष्ठ पाषाण आदिकी प्रतिमा तथा अन्य पदार्थोंमें 'यह वह है' इस प्रकार किमीकी कल्पना करना सो स्थापनानिक्षेप है । इसके दो भेद हैं—१ तत्प्राकार स्थापना और २ अतत्प्राकार स्थापना । तिस पदार्थका उसा आकार है उन्म उमी आकारवालेकी कल्पना करना सो तत्प्राकार स्थापना है—जैसे पार्श्वनाथकी प्रतिमामें पार्श्वनाथकी कल्पना करना । और भिन्न आकारवाले पदार्थमें किसी भिन्न आकारवालेकी कल्पना करना सो अतत्प्राकार स्थापना है । जैसे सतलकी गोटा'म बादशाह' यजीर बगैरकी कल्पना करना × ।

द्रव्यनिक्षेप—भूत भविष्यत् पर्यायकी मुख्यता लेकर वर्तमानमें कहना सो द्रव्यनिक्षेप है । जैसे पहले कभी पूजा करनेवाले पुरुषको

१-प्रमाण और नयेके अनुसार प्रचलित हुए लोकयन्त्रकारका निक्षेप बदलते हैं । × नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेपमें अन्तर-गामनिक्षेपम पूर्य अष्टयका व्यवहार नहीं होता पर स्थापनानिक्षेपम पूर्य अष्टयका व्यवहार होता है ।

वर्तमानम पुनारी कहना और भविष्यत्में राजा होनवाले राजपुत्रको राजा कहना ।

**भावनिक्षेप**—कवल वर्तमान पर्यायकी मुस्त्यतासे अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसका उसी रूप कहना सो भावनिक्षेप है । जैसे—काष्ठको काष्ठ अवस्थाम काष्ठ, आगी होने पर आगी ओर कोयला होजाने पर कोयला कहना ॥ ५ ॥

सम्यग्दर्शन आदि तथा तत्त्वोंक जाननेक उपाय—

### प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६ ॥

**अर्थ**—सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय और जीव आदि तत्त्वोंक ( अधिगम ) जान ( प्रमाणनयै ) प्रमाण और न्यास [ भरति ] होता है ।

**प्रमाण**—जो पदार्थक सर्वज्ञको ग्रहण करे उसे प्रमाण कहते हैं इसक दो भेद ह । १ प्रत्यक्ष प्रमाण और २ पराक्ष प्रमाण । आत्मा जिन ज्ञानक द्वारा किमी बाह्य निमित्तकी सहायताक बिना ही पदार्थोंको स्पष्ट जाने उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं और इन्द्रिय तथा प्रकाश आदिकी सहायतासे पदार्थोंको एकदंग जान उस पराक्ष प्रमाण कहत हैं ।

**नय**—जो पदार्थके एकदंगको विषय कर—जाने उसे नय कहते हैं । इसक दो भेद हैं—१ द्रव्यार्थिक, २ पर्यायार्थिक । जो सुप्त्य रूपसे द्रव्यका विषय करे उसे द्रव्यार्थिक ओर जो मुस्त्य रूपसे पर्यायको विषय कर उसे पर्यायार्थिक नय कहत हैं\* ॥ ६ ॥

\* इन अत्रात्तर भदोंकी विवक्षासे ही सूत्रमें दिवचनके स्थानपर चतुर्वचनका प्रयोग किया गया है ।

## निर्देशस्वामित्वमाधनाधिकरणस्थितिविधानतः । ७।

अर्थ—निष्ठा, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इनस भी जागतिक तत्त्व तथा सम्बन्धन आदिका व्यापार होता है ।

निर्देश—वस्तु स्वरूपका कथन करना सो निर्देश है ।

स्वामित्व—वस्तुका अधिकारका स्वामित्व कहत है ।

साधन—वस्तुकी उत्पत्तिक कारणको माधन कहते है ।

अधिकरण—वस्तुका आधारको अधिकरण कहत है ।

स्थिति—वस्तुका कालकी अवधिकी स्थिति कहते है ।

विधान—वस्तुका भेदको विधान कहत है ॥ ७ ॥\*

\* ऊपर यह हुए उद् अनुवागास सम्बन्धानका वगन इसप्रकार है—

निर्देश—जीव जाति तत्त्वका यथाऽ अज्ञान करना

स्वामित्व—ज्ञान ।

साधन—सा नक ग भेद है— १ जतम्ह और २ साध । दानमात्रके उपनाम, शय अधा तथापामसा अंतरद्ग साधन कहत है, यत् सदक पन्ना जाता है । साध साधन यह प्रकारका होता है जिन नरक गतिम तीसरे नरक तक 'जातिस्मरण' धर्मश्रवण जीव दुस्मानुभव' य तीन तथा चौथेम साधन तक जातिस्मरण और 'दुस्मानुभव' य दो साधन है । तिसर और मनुष्यगतिम 'जातिस्मरण' 'धर्मश्रवण' और जिनगिम्ह दशन' य तीन साधन है । दशगतिम बारम्ब म्यगके पन्ना 'जातिस्मरण', धर्मश्रवण', 'जिनकल्याणक दान और दसदिदान' ये चार उनके आग सोलहव स्वग तक दसदिदान' का छाडकर तीन, तथा नवमयकोम जातिस्मरण' और 'धर्मश्रवण' य दो साधन है । दसके आग सम्बन्धि जाव ही उत्पन्न होने हैं ।



कता वर्णन करनेको अलम्बुत्व करते हैं ॥ ८ ॥

सम्यग्ज्ञानका घर्षण; ज्ञान-भेद और नाम—

**मतिश्रुतावधिमन, पर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥**

अर्थ—( मति श्रुतावधिमन पर्ययकेवलानि ) मति, ध्रुव, अवधि, मन पर्यय और क्वच य पांच प्रकारक (ज्ञान) ज्ञान [मति] हैं।

मतिज्ञान—जो पांच इन्द्रियों और मनकी सहायतासे स्पष्ट जाने उस मतिज्ञान कहते हैं।

श्रुतज्ञान—जो पांच इन्द्रियों और मनकी सहायतासे मति-ज्ञानके द्वारा जान हुए पदार्थको विनाप रूपसे जानता है उसे श्रुत-ज्ञान कहते हैं।

अवधिज्ञान—जो इन्द्रियाकी सहायताके बिना ही रूपी पदार्थको द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा लिय हुए एकदश स्पष्ट जाने उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

मन पर्ययज्ञान—जो किसीकी सहायताके बिना ही अथ पुरुषके मनमें स्थित रूपी पदार्थको एकदश स्पष्ट जाने उसे मान-पर्ययज्ञान कहते हैं।

केवलज्ञान—जो सब द्रव्यों तथा उनकी सब पर्यायोंको एकसाथ स्पष्ट जाने उस केवलज्ञान कहते हैं ॥ ९ ॥

प्रमाणका लक्षण और भेद—

**तत्प्रमाणे ॥ १० ॥**

अर्थ—( तत् ) ऊपर कहा हुआ पांच प्रकारका ज्ञान ही (प्रमाणे) प्रमाण [अस्ति] है।

# मतिज्ञानके ३३६ भेद ।

## मतिक्रान

१	२	३	४
अवग्रह	इहा	अथाय	धारणा
व्यज्जानावग्रह ॐ ॐ ॐ ॐ	एतु रहुविष क्षिप्र अनिसृत अनुक्त प्रुव एक एकविष अक्षिप्र निसृत उक्त अप्रुव	एतु रहुविष क्षिप्र अनिसृत अनुक्त प्रुव एक एकविष अक्षिप्र निसृत उक्त अप्रुव	एतु रहुविष क्षिप्र अनिसृत अनुक्त प्रुव एक एकविष अक्षिप्र निसृत उक्त अप्रुव
अर्थानावग्रह ॐ ॐ ॐ ॐ	ॐ ॐ ॐ ॐ	ॐ ॐ ॐ ॐ	ॐ ॐ ॐ ॐ
१२×४	१२×६	१२×६	१२×६
+ ४८	+ ७२	+ ७२	+ ७२
१२४	१२४	१२४	१२४

# प्रथमाध्याय—अङ्गप्रविष्ट श्रुतज्ञानका विस्तार ।

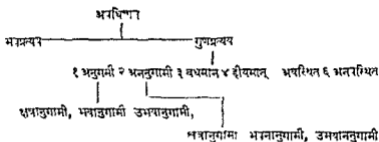
लोकविदु	त	त	आमप्रवाद
त्रियागिशास्त्र	त	त	सन्धप्रवाद
प्राणावायवप्रवाद	त	त	पानप्रवाद
कन्याणवाद	त	त	अग्निनास्तिप्रवाद
विसानुवाद	त	त	वीर्यानुप्रवाद
श्रुत्यात्यान्वाद	त	त	अप्रायणी पूर्व
कर्मप्रवाद	त	त	उत्पाद पूर्व

सूत्रगत		प्रथमानुयोग
व्याख्याप्रसक्ति	म	रूपगता
द्वीपमागप्रसक्ति	क	आकाशगता
जम्बूद्वीपप्रसक्ति	रि	मायागता
सूर्यप्रसक्ति	प	स्थलगता
चन्द्रप्रसक्ति	ल	जलगता

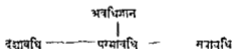
- १२ दृष्टिवादाङ्ग
- ११ विपाकसूत्राङ्ग
- १० प्रश्लेषाकरणाङ्ग
- ९ अनुसारीपपादिकदशाङ्ग
- ८ अन्नकृदाङ्ग
- ७ उपामकाशयनाङ्ग
- ६ शाकृधमरुथाङ्ग
- ५ व्याख्याप्रसक्त्याङ्ग
- ४ समवायाङ्ग
- ३ स्थानाङ्ग
- २ सूत्रकृताङ्ग
- १ आचाराङ्ग

## अवधिज्ञानक भेद ।

[ क ]



[ ख ]



## मनःपर्यवज्ञानके भेद ।

मन पर्यवज्ञान

।





मातार्थ—सम्यग्ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। उसके दो भेद हैं—  
१ प्रत्यक्ष, २ परोक्ष ॥ १० ॥

परोक्षप्रमाणके भेद—

**आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥**

अर्थ—(आद्ये) आत्तिक दो अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान  
(परोक्षम्) परोक्ष प्रमाण [म्न] ॥ है ११ ॥

प्रत्यक्षप्रमाणके भेद—

**प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥**

अर्थ—(अन्यत्) नेपक तीन अर्थत् अवधि, मन पर्यय और  
केवलज्ञान ( प्रत्यक्षम् ) प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ १२ ॥

मतिज्ञानके दूसरे नाम—

**मति.स्मृति.सज्ञा.चित्ताभिनिरोध इत्यनर्थांतरम् १३**

अर्थ—मनि, स्मृति मना, चिन्ता और अभिनिरोध इत्यादि  
अन्य पदार्थ नहीं हैं अथत् मतिज्ञानके ही नामान्तर हैं ।

मति—मन और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालके पदार्थोंका जानना  
मति है ।

स्मृति—पहले देखे सुने हुए पदार्थोंका वर्तमानमें स्मरण  
आनेको स्मृति कहते हैं ।

सज्ञा—वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर 'यह वही है'  
इसप्रकार स्मरण और प्रत्यक्षके जोड़रूप ज्ञानको सना कहते हैं । इसीका  
दूसरा नाम प्रत्यभिज्ञान है ।

- चिन्ता—'जहाँ जहाँ घूम होता है वहाँ वहाँ अग्नि अवस्था होती है—जैसे रसोई घर' उमप्रकारक व्याप्ति जानकी चिन्ता कथते हैं।

अभिनिरोध—कारणस काथेक जान होनको अभिनिरोध कहत है—जस 'उम पहादम अग्नि है, क्योंकि उमप्र घूम है' इसीका दूसरा नाम अनुमान है ।\*

मतिज्ञानकी उपलब्धि का कारण और स्वरूप—

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

अर्थ—( तत् ) व मतिज्ञान ( इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ) पांच इन्द्रिय और मनक निमित्तमे होता है ॥ १४ ॥

मतिज्ञानक भेद—

अवग्रहेहायाधारणा. ॥ १५ ॥

अर्थ—मतिज्ञानक अवग्रह ईहा, अयाय और धारणा ये चार भेद है ।

अवग्रह—+दगनक बाद शुद्ध वृष्ण आदि रूपविशेषका जान होना अवग्रह है ।

ईहा—अवग्रह द्वारा जान हुए पदार्थको विशेषरूपस जाननकी चेष्टा करना ईहा है । जैसे—वह शुद्धरूप वगुण है या पताका ।

। \* य सद्य जान भाषेजानाकरण कमक भाषापगाममे होते हैं इत्यनिय निमित्त नामाथकी अपेक्षासे स्वभा एव रहा है पन्तु इन समय स्वरूप भेद-जयभेद जस्य है ।

+ छद्मय जावोक ज्ञानक पल दगन हाता है । किसी वस्तुकी मत्ता मानके देखनका दगन कहते हैं । इसका विषय बहुत सूक्ष्म हाता है जा कि उदाहरणसे नहीं समझाया जा सकता ।

अत्राय—विशेष चिह्न देखनेसे उमका निश्चय हो जाना सो अत्राय है । जैसे—उस शुक पत्थरमें पर्याप्त फटफटाना उटना आदि चिह्न देखनेसे धगुलाका निश्चय होना ।

धारणा—अत्रायमें निश्चित किये हुए पदार्थको कालान्तरमें नहीं भूलना सो धारणा है ॥ १५ ॥

अत्रप्रह आदिके विषयभूत पदार्थ—

बहुबहुविधक्षिप्रानि सृतानुक्तध्रुवाणा सेतराणा १६

अर्थ—( सेतराणाम्—बहुबहुविधक्षिप्रानि सृतानुक्तध्रुवाणाम् ) अपन उल्टे भेजों सहित बहु आनि अथत् बहु बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त, ध्रुव और इनमें उरते एक, एकत्रिध, अभिप्र, निसृत, उक्त तथा अध्रुव इन चार प्रकारके पदार्थोंका अवगह इहादिरूप ज्ञान होना है ।

१ बहु—एकसाथ एक पदार्थका बहुत अत्रप्रहैदि होना । जैसे—गोहकी राशि देखनेसे बहुतमें गेहूँओंका ज्ञान ।

२ बहुत्रिध—बहुत प्रकारके पदार्थोंका अत्रप्रहैदि जान होना । जैसे—गेह चना, चावल आदि कई पदार्थोंका ज्ञान ।

३ क्षिप्र—शीघ्रतासे पदार्थका ज्ञान होना ।

४ अनिसृत—एकदशके जानसे मर्षदशका ज्ञान होना—जैसे—राह निकली हुई सड़ देषकर जलमें डूबे हुए पूरे हाथोंका ज्ञान होना ।

५ अनुक्त—बचनेसे कहे बिना अभिप्रायसे जान लना । जैसे—मुहको मृत तथा हाथ आदिके इधारासे प्यास मनुष्यका ज्ञान

६ ध्रुव—बहुत काल तक जैसाका तैसा ज्ञान होते गहना ।

७ एक—अल्प वा एक पदार्थका ज्ञान । जैसे—एक गेंड आत्मिका ज्ञान ।

८ एरुप्रिय—एक प्रसारक पदार्थका ज्ञान । जैसे—एकसदृश गेहूँका ज्ञान ।

९ अक्षिप्र—क्षिप्रगण—किमी पदार्थको धारे २ बहुत समयम जानना ।

१० नि सृत—बाहर निकले हुये प्रकृत पदार्थका ज्ञान होना ।

११ उक्त—शब्द सुननेके बाद ज्ञान होना ।

१२ अध्रुव—जो क्षण क्षण हीन अधिक होना रह उस अध्रुव ज्ञान कहते हैं ॥ १६ ॥

## अर्थस्य ॥ १७ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए वटु आदिक ग्राह भेद पदार्थ—द्रव्यके है अर्थात् बहु आदि विशेषण विशिष्ट पदार्थके ही अवग्रह आदि ज्ञान होते हैं × ॥ १७ ॥

अवग्रह ज्ञानमें विशेषता—

## व्यजनस्यावग्रह ॥ १८ ॥

× किमीका मत है कि चक्षु आदि इंद्रियों रूप आदि गुणोंका भी जानती है क्योंकि इंद्रियोंका सत्त्विय (सम्बन्ध) उदाहरण भाष्य दाता है । उस मतका स्पष्टन करनेके लिये हा ग्रन्थकर्ता अथवा यद् सूत्र लिखा है । इसमें निश्चय दाता है कि इंद्रियोंका सम्बन्ध पदार्थका ही साथ दाता है केवल गुणके साथ नहीं होता । ॥ १ ॥

अर्थ—(व्यञ्जनम्) अप्रकट रूप शब्दादि पदार्थोंका (अग्रह) सिर्फ अवग्रह ज्ञान होता है। ईहात्मिक तीन ज्ञान नहीं होते।

भाषार्थ—अग्रहके दो भेद हैं १ व्यञ्जनाग्रह और २ अथावग्रह।

व्यञ्जनाग्रह—अत्यक्त—अप्रकट पदार्थोंके अवग्रहको व्यञ्जनाग्रह कहते हैं।

अथावग्रह—यत्त—प्रकट पदार्थोंके अवग्रहको अथाग्रह कहते हैं ॥ १८ ॥

### न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

अर्थ—(चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्) नत्र और मनस व्यञ्जनाग्रह (व) नहीं होता है \* ॥ १९ ॥

श्रुतज्ञानका वणन श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिके प्रथम और भेद—

### श्रुत मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

अर्थ—(श्रुतम्) श्रुतज्ञान (मतिपूर्वम्) मतिज्ञानपूर्वक होता है अथवा मतिज्ञानके पश्चान् होता है। और वह श्रुतज्ञान (द्व्यनेकद्वादशभेदम्) को अनक तथा बारह भेदवाला है।

\* यह आदि १० पदार्थोंके अवग्रह आदि ४ प्रकारके ज्ञान, पांच इन्द्रियाँ और मन इन छः ही सहायतासे होते हैं इस लिये  $१० \times ४ = ४० \times ६ = २४०$  भेद हुए। इनमें व्यञ्जनाग्रहके  $१० \times ४ = ४०$  भेद जड़नेसे कुल  $२४० + ४० = २८०$  मतिज्ञानके प्रभेद होते हैं।

१ पुरना अथ कारण भी होता है  
अर्थ मतिज्ञान ही कारण जिसका यह भी हो

पश्चात्

पूर्वमन्व

६ मुद्र—बहुत वास्तव जैसाका तैसा ज्ञान होने रहना ।

७ एक—अथ वा एक पदार्थका ज्ञान । जैसे—एक ग

आदिका ज्ञान ।

८ एकविध—एक प्रकारक पदार्थोंका ज्ञान । जैसे—एकमदर

ब्रह्मोंका ज्ञान ।

९ अक्षिप्त—निर्मग्न—किमी पदार्थको ध्यान ० बहुत समयम जाता ।

१० नि सुत—नाश निकट हुये प्रकट पदार्थका ज्ञान होना ।

११ उक्त—शब्द सुनकर बाद ज्ञान ज्ञाना ।

१२ अनुभूत—वा क्षण क्षण ही अधिक होता रहे उम अनुभूत जात कहा है ॥ १६ ॥

### अर्थस्य ॥ १७ ॥

अर्थ—उपर कह हुए बहु आदिक वास्तव में पदार्थ— के है अथवा बहु आदि विगण विशिष्ट पदार्थक ही असमष्ट आदि ज्ञान होता है × ॥ १७ ॥

असमष्ट ज्ञानमें विशेषता—

### व्यजनस्यावग्रह ॥ १८ ॥

× किमीमा मा है कि चतु आदि इन्द्रियां रूप आदि गुणोंका ही जाननी हैं क्योंकि इन्द्रियोंका मंत्रित्व (सम्बन्ध) उहापर साथ जाता है । उम माया शब्दन करानके लिये हा प्रथकर्तान अथवा यह सुख लिये है । इसमें सिद्ध होता है कि इन्द्रियोंका सम्बन्ध पदार्थके ही साथ जाता है केवल गुणों साथ ही होता ।

अर्थ—(व्यञ्जनस्य) अप्रकट रूप शब्दादि पदार्थोंका (अप्रग्रह) निर्णय अप्रग्रह ज्ञान होता है। ईहादिक तीन ज्ञान नहीं होते।

भावार्थ—अप्रग्रहको भेद है १ व्यञ्जनाप्रग्रह और २ अथावग्रह।

व्यञ्जनाप्रग्रह—अप्यक्त—अप्रकट पदार्थोंके अवग्रहको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं।

अर्थावग्रह—न्यक्त—प्रकट पदार्थोंके अप्रग्रहको अथावग्रह कहते हैं ॥ १८ ॥

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

अर्थ—(चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्) नेत्र और मनस व्यञ्जनाप्रग्रह (व) नहीं होता है \* ॥ १९ ॥

श्रुतज्ञानका वर्णन श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिके प्रथम और भेद—

श्रुत मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

अर्थ—(श्रुतम्) श्रुतज्ञान (मतिपूर्वम्) मतिज्ञानपूर्वक होता है अर्थात् मतिज्ञानके पश्चात् होता है। और चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् (द्व्यनेकद्वादशभेदम्) दो अनेक तथा बाह्य भेदवाला है।

\* उक्त आदि १२ पदार्थोंके अप्रग्रह जादि ४ प्रकारके ज्ञान पांच इन्द्रियाँ और मन इन छ की सहायतासे प्राप्त हैं इस लिये  $१२ \times ४ = ४८ \times ६ = २८८$  भेद हुए। इनमें व्यञ्जनाप्रग्रहके  $१२ \times ४ = ४८$  भेद जटनेसे कुल  $२८८ + ४८ = ३३६$  मतिज्ञानके प्रभेद होते हैं।

१ पूर्वका अर्थ कारण भी होता है इसलिये 'मतिपूर्वक' इस पदका अर्थ मतिज्ञान है कारण निश्चय यह भी हो सकता है। मति पूर्वमस्य मतिपूर्वं मतिकारणमित्यर्थ।



६ ध्रुव—बहुत काल तक जैसाका तैसा जान होने गटना ।

७ एक—अल्प वा एक पदार्थका ज्ञान । जैसे—एक गेंड आदिका ज्ञान ।

८ एकविध—एक प्रकार के पदार्थोंका ज्ञान । जैसे—एकसदृश गेहूँजोंका ज्ञान ।

९ अक्षिप्त—निगमण—किसी पदार्थको धोरे २ बहुत समयमें जानना ।

१० निःसृत—गान्त्र निकले हुये प्रकृत पदार्थोंका ज्ञान होना ।

११ उक्त—शब्द सुनकर बाद ज्ञान जाना ।

१२ अनुप्रा—जो क्षण क्षण हीन अधिक होना रहे उस अनुप्रा ज्ञान कहते हैं ॥ १६ ॥

### अर्थस्य ॥ १७ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए बहु आदिक चारह भेद पदार्थ—द्रव्यके हैं अर्थात् बहु आदि निगमण निशिष्ट पदार्थके ही अरम्भ आदि ज्ञान होने हैं ॥ १७ ॥

अरम्भ ज्ञानमें विशेषता—

### व्यजनस्यावग्रह ॥ १८ ॥

\* त्रिमूर्ति मत है कि चतु आदि इन्द्रियों रूप आदि गुणोंसे हा जानती हैं क्योंकि इन्द्रियोंका सन्निकष (सम्बन्ध) उद्धारक साथ हाता है । उस मतका स्पष्टन करनेके लिये हा प्रथमस्थाने 'अर्थस्य' यत् सूत्र लिखा है । इसमें सिद्ध हाता है कि इन्द्रियोंका सम्बन्ध पदार्थके ही साथ होता है, केवल गुणसे साथ नहीं होता । । । ।

अर्थ—(व्यञ्जनस्य) अप्रकट रूप शब्दादि पदार्थोंका (अप्रग्रह) सिर्फ अप्रकट जान होता है। इत्यादिक तीन जान नहीं होते।

भार्यार्थ—अप्रकटके दो भेद हैं १ व्यञ्जनावप्रकट और २ अथावप्रकट।

व्यञ्जनावप्रकट—अथक्त—अप्रकट पदार्थको अवप्रकटको व्यञ्जनावप्रकट कहते हैं।

अर्थ्यावप्रकट—यक्त—प्रकट पदार्थके अप्रकटको अथ वप्रकट कहते हैं ॥ १८ ॥

### न चक्षुरनिद्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

अर्थ—(चक्षुरनिद्रियाभ्याम्) नत्र ओर मनम व्यञ्जनावप्रकट (२) नहीं होता है \* ॥ १९ ॥

श्रुतज्ञानका वर्णन श्रुतज्ञानकी उपलब्धिका प्रथम और भद्र—

### श्रुत मतिपूर्व द्वयनेकद्वादशमेडम् ॥ २० ॥

अर्थ—(श्रुतम्) श्रुतज्ञान (मतिपूर्वम्) मतिज्ञानपूर्वक होता है अर्थात् मतिज्ञानके पश्चात् जाना है। ओर वत् श्रुतज्ञान (द्वयनेकद्वादशमेडम्) का अनक तथा वाग्वह भेदवाला है।

\* २० आदि १० पदार्थोंके अवप्रकट आदि ४ प्रकारके ज्ञान पाच इन्द्रियों और मन इन छःका सहान्तास होते हैं इस लिये  $१२ \times ४ = ४८ \times ५ = २४०$  भद्र हुए। इनमें व्यञ्जनावप्रकटके  $१२ \times ४ = ४८$  भेद जाटनेस कुल  $२४० + ४८ = ३३६$  मतिज्ञानके प्रथम होत हैं।

१ प्रथम अथ कारण भी होता है इसलिये 'मतिपूर्वक इस पदार्थ अर्थ मतिज्ञान के कारण निवृत्त' यह भी हो सकता है। मति पदार्थोंके मति निवृत्त

भावार्थ—श्रुतज्ञान मतिज्ञानक धात्म होता है। उसका दो भेद है १—जग बाह्य और अग प्रविष्ट । उनमेंसे अग बाह्यक अनेक भेद हैं और अग प्रविष्टक—१ आचाराग, २ सुखवृत्ताग, ३ स्थानाग, ४ समवायाग, ५ चारयाप्रसक्तिअङ्ग, ६ ज्ञातृधर्मकथाङ्ग, ७ उपासकाध्ययनाग, ८ अन्तर्दृशाग, ९ अनुत्तंगौष्पादिकदशाग, १० प्रश्न्याकर्णाग, ११ विषाकमृताग और १२ दृष्टिप्रसादअग, ये नारद भेद हैं।

अवधिज्ञानका वर्णन—

**भगप्रत्ययोऽवधिदेवनारकाणाम्\* ॥ २१ ॥**

अर्थ—( भगप्रत्यय ) भगप्रत्यय नामका ( अवधि ) अवधिज्ञान ( देवनारकाणाम् ) देव और नारकियोंके होता है ।×

भावार्थ—अवधिज्ञानक दो भेद हैं—१ भगप्रत्यय और २ गुणप्रत्यय ( क्षायोष्णमिक ) ।

भगप्रत्यय—देव और नरक भग ( पर्याय ) के कारण जो जपते हो उसे भगप्रत्यय कहते हैं ।

गुणप्रत्यय—जो किसी पथय त्रिषपकी अपक्षा १ रररर अवधि ज्ञानावरण कर्मेक क्षयापशमसे होने उस गुणप्रत्यय अथवा क्षयापशम निमित्तिक अवधिज्ञान कहते हैं ।

नाट—यहा इतना स्मरण रखना चाहिये कि भगप्रत्यय अवधिज्ञानम भी अवधिज्ञानावरण कर्मेका क्षयोपशम रहता है । पर वह

रर \* तीर्थङ्गोंके भी भगप्रत्यय अवधिज्ञान होता है ।

× सम्प्रति देव नारकियोंके अवधि और मिथ्यादृष्टि देव नारकियोंके कुअवधि होता है ।

क्षयोपशम दव और नरक पयायमें नियमसे प्रकट हो जाता है ।

क्षयाशम निमित्तक अवधिजानक भेद और स्वामि—

**क्षयोपशमनिमित्त पड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥**

अर्थ—( क्षयोपशमनिमित्त ) क्षयापशम निमित्तक अवधि-  
जाना ( पड्विकल्प ) अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान,  
अवस्थित और अनवस्थित इमप्रकार छह भेदवाला है और वह  
( शेषाणाम् ) मनुष्य तथा तिर्यञ्चोक्त [ भवति ] होता है ।

अनुगामी- जो अवधिजान सूर्यक प्रकारकी तरह जीवके  
साथ साथ जावे उस अनुगामी कहत है ।

अननुगामी—जो अवधिजान साथ नहीं जाव उस अननु-  
गामी कहत है ।

वर्द्धमान—जो शुक्लपक्षम चन्द्रमाकी कलाओंकी तरह बढ़ता  
रहे उसे वर्द्धमान कहने है ।

हीयमान—जो ऋणपक्षम चन्द्रमाकी कलाओंकी तरह घटता  
रहे उस हीयमान कहत है ।

अवस्थित—जो अवधिजाना एवमा ग्हे-न धटे न वीं उसे  
अवस्थित कहत है । जेस सूर्य अथवा निल आत्तिक चिह्न ।

अनवस्थित—जो एवासे प्रेरित जलकी तरङ्गोंकी तरह घटता  
बढ़ता ग्हे-एकमा न रहे उसे अनवस्थित अवधिजान कहते  
है ॥ २२ ॥ ( १ १ १ १ १ १ )

मन पर्यय ज्ञानके भेद—

**ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥**

अर्थ—( मन पर्यय ) मन पर्ययज्ञान ( ऋजुमति विपुल-  
मती ) ऋजुमति और विपुलमतिक भेदसे दो प्रकारका है ।

ऋजुमति— जो मन वचन कायकी सरलतामें विन्नित, दृमरेके  
मनम स्थित पर्ययको जान उस ऋजुमति मन पर्ययज्ञान कहते हैं ।

विपुलमति— जो सरल तथा तृटिरूप परक मनम स्थित  
पदार्थको जान उस विपुलमति मन पर्ययज्ञान कहते हैं ॥ २३ ॥

ऋजुमति और विपुलमतिम अंतर—

**विशुद्धप्रतिपाताभ्या तद्विशेष ॥ २४ ॥**

अर्थ—( विशुद्धप्रतिपाताभ्याम् ) परिणामोंकी शुद्धता  
और अप्रतिपात-कलना होकर पले नहीं छूटना, इन दो बातों  
( तद्विशेष ) ऋजुमति और विपुलमति मन पर्ययज्ञान विशेषता है ।

भार्य—ऋजुमतिम अपक्षा विपुलमतिम आत्माक भावाकी  
शुद्धता अधिक होती है । तथा ऋजुमति होकर छूट भी जाता है  
पर विपुलमति कलनाकर पले नहीं छूटता । दोनों भेदोंमें मन पर्यय  
ज्ञानकरण कर्मक क्षयोपशमकी अपक्षा हीनाधिकता रहती है ॥ २४ ॥

अप्रधिज्ञान और मन पर्ययज्ञानमें विशेषता—

**विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमन पर्यययोः ॥ २५ ॥**

अर्थ—( अवधिमन पर्यययोः ) अवधि और मन पर्ययज्ञानमें—

( विशुद्धिद्वेषामिप्रियेभ्य ) विगुद्धता, क्षेत्र, स्वामी× जोर  
विषयकी अपेक्षा [ विशेष मरति ] विशेषता होती है ।

भारतीय—विगुद्धि आत्मीक यूनानधित्वास अवधि ओर  
मन पर्ययानम भद्र हाता है ॥ २५ ॥

मति और ध्रुतानका विषय—

मतिश्रुतयोर्निबधो द्रव्येष्वमर्षपर्यायेषु ॥ २६ ॥

अर्थ—(मतिश्रुतयो ) मतिज्ञान और ध्रुतानका (निबध )  
विषयसम्बन्ध (अमर्षपर्यायेषु) मन पर्ययोंस रहित (द्रव्येषु) नीव  
पुटल आदि मन द्रव्योंम [ अस्मि ] है ।

भारतीय—विद्विष्य और मनकी सहायताम उत्पन्न हुए मति  
ध्रुतानका रूपी अरूपी मभी द्रव्योंका जानत हैं पर उनकी मन पर्ययोंको  
नहीं जान पाने । इसलिये उनका विषय सम्बन्ध द्रव्योंका पुटल पर्यायोंक  
साथ होता है ॥ २६ ॥

अवधिज्ञानका विषय—

रूपिष्ववये. ॥ २७ ॥

अर्थ—( अवधे ) अवधिज्ञानका विषय सम्बन्ध (रूपिषु)  
\*रूपी द्रव्योंम है अथत् अवधिज्ञानरूपी पदार्थोंको जानता है ॥ २७ ॥

× मन पर्ययाना उत्तम शक्तिधारी मुनियोंक ही हाता है पर जगधि  
ज्ञान चाणो गतियोंके भीगोंक हो सक्ता है ।

\* निरामे रूप रम गंध रस शब्द पाया जाव ऐसे पुटलद्रव्य  
पुटलद्रव्यस सम्बन्ध खनवाले सखारी जीव भी रूपी

मा पर्यय ज्ञानका विषय—

तदनन्तभागे मन पर्ययस्य ॥ २८ ॥

अर्थ—( तदनन्तभागे ) सत्राधि ज्ञान विषयभूत रूपी द्रव्यक अनन्तरे भागम ( मन पर्ययस्य ) मा पर्यय ज्ञानका विषय-सम्बन्ध है ।

भारार्थ—सत्राधि त्रिम रूपी त्रयको जानता है उसमें नहुत तदम रूपी त्रयको मन पर्यय ज्ञान जानता है ॥ २८ ॥

कवलज्ञानका विषय—

सर्गद्रव्यपर्यायेषु कवलस्य ॥ २९ ॥

अर्थ—( सर्गद्रव्य ) सर्गज्ञानका विषयसम्बन्ध ( सर्गद्रव्य-पर्यायेषु ) मत्र द्रव्य और उनकी मत्र पर्यायोंमें है । अथत् कवल-ज्ञान एकसाथ मत्र पर्यायोंका जानता है ॥ २९ ॥

एक जायके परमात्त कितन गान हा मकर है ?—

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ३०

अर्थ—( एकस्मिन् ) एक जीवम ( युगपत् ) एकसाथ ( एकादीनि ) एकका जाति लकर ( आचतुर्भ्यः ) चार ज्ञाननक ( भाज्यानि ) विभक्त करनक योग्य है अथत् हा सदन है ।

भारार्थ—यदि एक ज्ञान हो तो कवलज्ञान होता है । जो हों तो मति श्रुत जान है । तीन होता मति श्रुत अवधि अथवा मति श्रुत और मन पर्यय होत है । यदि चार हों तो मति श्रुत अवधि और मन पर्यय जान होत है । एकसाथ पाचों ज्ञान किमी भी जीवके

वहीं होने । प्रारम्भिक चार ज्ञान ज्ञानावगण कर्मक क्षयोपशममे होते हैं और अतका कवलान क्षयस होना है ॥ ३० ॥

मति श्रुत और अरधितानम मिथ्यापन—

**मतिश्रुतावधयो विपर्ययाश्च ॥ ३१ ॥**

अर्थ—( मतिश्रुतावधय ) मति श्रुत और अरधि ये तीन ज्ञान ( विपर्यया च ) विपर्यय भी होत हैं । उपर कहे हुए पात्रों ज्ञान सम्यग्ज्ञान होते हैं परन्तु मति श्रुत और अरधि ये तीन ज्ञान मिथ्या ज्ञान भी होत हैं । इन्हे क्रमसे कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान और कुअरधि ज्ञान ( निमज्जावधि ) कहते हैं । \*

नोट—इन तीन ज्ञानोंमें मिथ्यापन मिथ्यापनस समर्पसे होना है । जैसे मोठे दुधम कटुआपन कडुवी तुरडीक मर्मगस होला ह ॥३१॥

प्रश्न—निम प्रकार पदार्थोंको सम्यग्दृष्टि जानना हे उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी जानता हे फिर सम्यग्दृष्टिका ज्ञान सम्यग्ज्ञान और मिथ्यादृष्टिका ज्ञान मिथ्याज्ञान क्यों कहलाता हे ?

उत्तर —

**सदमतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥**

अर्थ—( यदृच्छोपलब्ध ) अपनी इच्छानुसार जैसा तेमा जानक कारण (सदमता) मत् और असत् पदार्थोंमें (अविशेषात्) विशेष ज्ञान न होनेस (उन्मत्तवत्) पागलपुरुषके जानकी तरह मिथ्यादृष्टिका ज्ञान मिथ्याज्ञान ही होता है ।

भावार्थ—जैसे पागलपुरुष जन स्त्रीको स्त्री और माताको माता

\* ५ सम्यग् और ३ मिथ्या दृष्टिकाद मिलकर ज्ञानावगणक ८ भेद शक्ये हैं ।



ममज्ञ रहा है तब भी उसका चान मिथ्या जान कहलाता है क्योंकि उसका माता और स्नायु वीचम कोई स्थिर अक्षर नहीं है । वैसे ही मिथ्यादृष्टि जब पदार्थको ठीक जान रहा है तब भी सत अमत्का निर्णय नहीं होना उसका चान मिथ्याचान ही कहलाता है ॥३२॥

नयाक भेद—

नैगममग्रहव्यवहारसूत्रगण्डममभिरूढव-

भ्रता नया. ॥ ३३ ॥

अर्थ—नगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुमय, गन्ध, ममभिरूढ और एवभूत ये सात नय हैं \* ।

नैगम नय—चा नय अनिपुण अर्थक सङ्कल्प मात्रको ग्रहण करता है वह नैगम नय है । जैसे लफडी पानी आदि सामग्री इकट्ठी करनेवाले पुष्पस काइ पृथका है कि आप क्या कर रहे हैं तब वह उत्तर देता है कि सटा बना गया है । यद्यपि उस समय वह गेटी नहीं बना रहा था तथापि नैगम नय उसका इस उक्तका सार्थक मानता है ।

मग्रह नय—जो नय अपनी जातिना विरोध न करते हुए एकपनमें समस्त पदार्थको ग्रहण करता है उसे सग्रह नय कहते हैं । जैसे सत्, द्रव्य, घट इत्यादि ।

व्यवहार नय—जो नय सग्रह नयके द्वारा ग्रहण किये हुए पदार्थको विधिपूर्वक भेद करता है वह व्यवहार नय है । जैसे सत् दो प्रकारका है—द्रव्य और गुण । द्रव्यक ६ भेद हैं—चीन, पुटल, धर्म,

\* उनुके अनेक धर्मोमसं किसी एकरी मुख्यता पर अन्य धर्मोका विरोध न करत हुए पदार्थका जानना से नय है ।-

अधर्म, आकाश, काल। गुणके दो भेद हैं—मामान्य और विशेष। इस तरह यह नय बहातक भेद करता जाता है जहाँतक भेद हो सके हैं।

ऋजुमूत्र नय—जो सिर्फ वर्तमानकालक पदार्थका ग्रहण करे उसे ऋजुमूत्र नय कहते हैं।

शब्द नय—जो नय लिङ्ग मस्या कारक आदिके व्यवहारको दृष्ट करता है वह शब्द नय है। यह नय ऐतद्देशिक भ्रम पदार्थको भेद-प ग्रहण करता है। जैसे दार ( पु ) भार्या (स्त्री०) कर्त्र (न०) ये तीनों शब्द भिन्न लिङ्गगते होकर भी एक ही स्त्री पदार्थके वाचक हैं पर यह नय स्त्री पदार्थको लिङ्गक भेदमें तान भेदरूप मानता है।

समभिन्ध नय—जो नय नाना अर्थको उल्लङ्घनकर एक अर्थको स्थितिमें ग्रहण करता है उस समभिन्ध नय कहते हैं। जैसे वचन आदि अनेक अर्थोंका वाचक गा शब्द किसी प्रकरणमें गाय अर्थका वाचक होता है। यह नय पर्यायक भेदस अर्थका भी भेदरूप ग्रहण करता है। जैसे इन्द्र शत्रु पुत्रर ये तीनों शब्द इन्द्रक नाम हैं पर यह नय इन तीनोंक भिन्न २ अर्थ ग्रहण करता है।

एवभूत—जिस शब्दका जिस क्रियारूप अर्थ है उन्ही क्रियारूप परिणमत हुए पदार्थको जो नय ग्रहण करता है उस एवभूत नय कहते हैं। जैसे पुत्रागीको पूजा करते समय ही पुत्रारी कहना। \*

इति धी उमास्वामिबिरचिते मोक्षसाधने प्रथमाध्याय ॥ १ ॥

\* नय और निवचन ज्ञान—नय पाक भेद है और निवचन उम ज्ञानके अनुसार किये गये व्यवहारको कहते हैं। इनमें ज्ञान और क्षेत्र विषयी जयवा निवचनका भेद है।

## प्रश्नावली ।

- ( १ ) नत्र कमम कम कितने होसकत ह ?
- ( २ ) निफ सम्पञ्चारिम मोक्ष प्राप्त हासकना या नहीं ?
- ( ३ ) निक्षप निम कहत ह ?
- ( ४ ) नय जौ प्रमाणम कितना अन्तर है ?
- ( ५ ) ध्रुवपान परले क्षावा है या मतिज्ञान ?
- ( ५ ) क्षयापशम निमित्तक अत्रधिज्ञानम भइ गिनाजा ?
- ( ७ ) मग पर्यय और अत्रधिज्ञानम क्या अन्तर है ?
- ( ८ ) क्या अत्रधिज्ञानम विना भी मग पर्ययलाग होसकता है ?
- ( ९ ) समग्र उयका क्या स्वरूप ह ? उदाहरण सहित बनावो ?
- ( १० ) नय और निक्षपम क्या अन्तर है ?
- ( ११ ) क्या नय भी मि या होत है ? यदि होत है तो क्या ?

## द्वितीय अध्याय ।

जावके अनाधारण भाव—

औपशमिकक्षायिको भावो मिश्रश्च जीवम्य

स्वतत्त्वमोदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अर्थ—( जीवस्य ) जीव ( औपशमिकक्षायिका ) औप-  
शमिक और क्षायिक ( भावो ) भाव, ( च मिश्र ) और  
मिश्र तः ( औदयिकपारिणामिको च ) औदयिक और परिणा-  
मिक ये पाचो हो भाव ( स्वतत्त्वम् ) निजक भाव है अथत् जीवको  
छाकर अन्य किमीम नहीं पाये जाने ।

उपशम तथा औपशमिक भाव—द्रव्य क्षेत्र काल भारके निमित्तसे कर्मकी शक्तिके प्रकट १ होनेका उपशम कहते हैं और कर्मके उपशम आत्माका जो भाव होता है उसे औपशमिक भाव कहते हैं । जम निर्मलीक मरोगस पानीकी काचड नाचे बैठ जाती है और पानी साफ हो जाता है ।

क्षय तथा क्षायिकभाव—कर्मोंक ममूल विनाश हानका क्षय कहते हैं । जैसे पूर्ण अहारगमे जा कीचड नाच बैठ गई थी उस कीचडका विलकुल अन्व हो जाना । कर्मोंक क्षयस जा भाव होता है उसे क्षायिक भाव कहते हैं ।

क्षयोपशम तथा क्षायोपशमिक भाव (मिश्र) का लक्षण—सर्वघातिस्पर्द्धकोंका उन्वाभावां क्षय तथा उहीक आगामी कालमें उदय आना जो निपेक उनका सन्वन्धारूप उपशम और ऋषातिस्पर्द्धकोंक उदय होनेको क्षयोपशम कहते हैं । जैसे पातीरी स्वच्छ ताका विलकुल नष्ट कर्मनाल कीचडक परमाणुओंक बीच बैठ जाने तथा कुछ हलक कीचडक परमाणुओंक मिटे रहनपर पानीम स्वच्छा-स्वच्छ अवस्था हाती है । कर्मोंक क्षयोपशममे जो भाव होता है उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं २

उदय तथा औदायिक भाव—स्थितिका पूर्ण कर्मक कर्मोंके

१ ज्ञानात्क सम्भव जानादि अनुवीज गुणोंका पूरा तीव्र घात उस अवस्था कहते हैं । २ विना फल दिए हुए उदयमान कर्मोंका खिर जाना । ३ एक समयमें जितन कम-परमाणु उदयमे आये, उतन उदयमे समूहा विरक्त रहते हैं । ४ जो आवेके जानादि गुणोंको

एक दिनको उच्य कर्तन है और कर्माके उदयमे जो भाव होता है उसे औदयिक भाव कर्तन है ।

पारिणामिक भाव—जो भाव कर्माके उपगम क्षय क्षयोपशम तथा उच्यकी अपथा ग रमता हुआ आत्माका स्वभाव मान हो उसे पारिणामिक भाव कर्तन है ॥ १ ॥\*

भाषाक भेद—

द्विनराष्टादशैरुविशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

अर्थ—ऊपर कह हुए पात्रा भाव ( यथाक्रमम् ) क्रमसे ( द्विनराष्टादशैरुविशतित्रिभेदा ) दो नव, अष्टादह, इरीस और तीन भेदवाल है ॥ २ ॥

औपगमिकभावक दो भेद—

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

अर्थ—औपगमिक सन्ध्यस्त्व और औपशमिक चारित्र ये दो आकाशमिक भावक भेद है ।

औपशमिक सम्यक्त्व—अततातुनधी मोक्ष सायालाम और मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमि यात्र तथा सम्यक्त्वप्रकृति इन साते प्रकृतियोंक

\* आनाकरण दगाकरण और जगत्तय इन तन घातिका कर्मोनी उदय, क्षय और अयोपगम य तीन, माहनीय कर्मोनी उदय अत्र अयोपगम और उपगम ये चारों तथा जगत्तया कर्मोनी उच्य और अय य दो अस्थाय होती है ।

१-अगादि मिथ्यादि और निमी निमी आदि मिथ्यादिदिने अनत, नुनधानी ४ और मिथ्यात्र इन पांच प्रकृतियोंके उपगमस्त हाता है ।

उपग्रहसे जो सम्यक्त्व होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

औपशमिक चारित्र—अप्रत्याग्यानावरणदि चारित्र मोहनी-  
यकी २१ प्रवृत्तियोंके उपग्रहसे जो चारित्र होता है उसे औपशमिक  
चारित्र कहते हैं ॥ ३ ॥

क्षायिकभावक नी भेद—

ज्ञानदर्शनदानलभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४॥

अर्थ—केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलभ,  
क्षायिकभोग, क्षायिकउपयोग, क्षायिकवीर्य, तथा चकारमे क्षायिक सम्यक्त्व  
और क्षायिक चारित्र ये नव क्षायिकभावके नद हैं \* ।

केवलज्ञान—जो नानाकरणक क्षयमे हा । केवलदर्शन—जो  
दर्शनकरणक क्षयमे हा । क्षायिकदान आदि पाच भाग—अतमय  
कर्मक ५ भेदके क्षयमे हात है । क्षायिक सम्यक्त्व—जा ऊपर कही  
हुई सात प्रवृत्तियोंके क्षयमे हा । क्षायिक चारित्र—जो ऊपर कही हुई  
२१ प्रवृत्तियोंके क्षयमे हो ।

क्षाय्यापशमिकभावक अटारह भेद—

ज्ञानाज्ञानदर्शनलभयश्चतुस्त्रिपञ्चभेदाः

सम्यक्त्वचारित्रमयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

अर्थ—(ज्ञानाज्ञानदर्शनलभय चतुस्त्रिपञ्चभेदा ) गति  
श्रुत अरधि मन पर्यय ये चार ज्ञान, बुभानि बुश्रुत बुअरधि ये तीन  
अज्ञान, चतुदर्शन अचतुदर्शन अरधिदर्शन य तीन दर्शन, क्षायोपश-

\* इन नी मायारा नी लक्षणा भा कृत हैं ।

गिक दान लाभ भोग उपभाग और वीर्य ये पाच लक्ष्मिया, तथा ( सम्यक्त्वचारित्रमयमामयमाश्च ) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और मयामासयम य अटान् भाव क्षायोपशमिक भाव हैं ।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व—अनन्तानुधी मोघ मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व सम्यग्नि चाल्य न्न ६ सप्रधाति प्रवृत्तियोंका उदयाभायी क्षयस तथा उन्नीक भागाभीकात्म उदयम श्रावणाले जो निषेक उनका सदव्यारूप उपशम आर दगायाति सम्प्रप्रवृत्तिका उदय नानपर जो सम्यक्दर्शन प्रकट होता है उसे श्रायापशमिफ सम्यक्त्व कहत हैं । इसीका दूसरा नाम कर्क सम्यक्त्व भी ह ।

क्षायोपशमिक चारित्र - अनन्तानुधी आन्ति वाग्द कपायका उदयाभायी क्षय तथा उन्नीक निषेकोका सदव्यारूप उपशम आर नञ्जन्त तथा नाशपायका यथासमय उदय हानपर जो चारित्र होता है उस क्षायोपशमिक चारित्र कहत हैं । इसीका दूसरा नाम सगम मयम है ।

सयमामयम—अनन्तानुधी आन्ति / प्रवृत्तियोंका उदयाभायी क्षय और उन्नीक निषेकोका सदव्यारूप उपशम तथा प्रयत्नानावरणात्ति १७ प्रवृत्तियोंका यथासमय उदय होणेपर आत्मानी जो विगताग्रित अवस्था होती है उस सयमामयम कहत हैं ॥ ५ ॥

आदयिकभावरूप इच्छात् भेद—

गतिक्रियायलिंगमिव्यादर्शनानानासयता-

सिद्धलेश्याश्रुतुश्रुतुस्त्र्येकैकैकैकपड्भेदा. ॥६॥

अर्थ—नरक तिरिघ मनुष्य और द्रव ये चार गति, श्रोत्र, मान, माया और लोभ ये चार कपाय, स्वीचद, पुचद और नपुमक ब्रद

ये तीन लिङ्ग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असत्य, अमिद्वत्त्व और कृष्ण नील कापोत पीत पद्म तथा शुक्र ये छह लेश्याण्, इन्द्रगर्भ सप्त मिलाकर औत्पत्तिकभाषके इफीस भेद हैं ॥ ६ ॥

पारिणामिकभाषक भेद—

जीवभन्याभन्यत्वानि च ॥ ७ ॥

अर्थ—जीवत्व, भन्य और अभन्यत्व ये तीन पारिणामिक भाषक हैं ।

नाट—मूत्रम जाये हुए ३ शब्दमे अम्बिन्य वस्तुत्व प्रमथन्य आदि सामान्य गुणोंका भी प्रमाण होता है ।

इन्द्रगर्भ जीवक सप्त मिलाकर कुल  $२+२।१८+११+३=५३$  त्रेपन भेद होने हैं ॥ ७ ॥

जायका लक्षण—

उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जीवका ( लक्षणम् ) लक्षण ( उपयोग ) उपयोग [ अस्ति ] है ।

उपयोग—आत्मिक चेतन्य गुणसम्बन्ध रसायनालपरिणामको उपयोग कहते हैं । उपयोग जीवका तदभूत लक्षण है ।

उपयोगक भेद—

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

१ औत्पत्तिकभाषके जो अज्ञानभाषक है वह अमानस्य होता है और शायोपशमिक अज्ञानभाव मिथ्यादर्शनक कारण दूषित होता है

२ लक्ष्मी । मिली हुई सगौरी प्रकृति लेश्या



अथ— ( म ) वर उपयोग मूलमे ( द्विप्रिध ) जानोप  
योग\* ओर दर्शनापयोग\* भेत्तम दो प्रकारका है । फिर क्रमसे  
( अष्टचतुर्भेद ) आठ और चार भेत्तम सन्ति ह अर्थात् जानोपयोगक  
मति श्रुत अप्रधि मन पर्यय ओर कण्ठ ज्ञान तथा कुमनि कुश्रुत और  
कुअप्रधि ये आठ भेत्त है । एत दर्शनापयोगक चक्षुदर्शन अबक्षुदर्शन  
अप्रधिदर्शन ओर कण्ठदर्शन य चार भेत्त है । इनप्रकार दोनों भेदाङ्ग  
मिलानस उपयोगक नाह भट्ट हा जात है ॥ ० ॥

जीवक भद—

**ससारीणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥**

अथ—व जीव ( ससारीण ) ससारी ( च ) और  
( मुक्ता ) मुक्त रूपप्रकार दो भेत्तवाल है । कर्म सहित जीवोंका  
ससारी और कर्मरहित जीवोंको मुक्त कहत है ॥ १० ॥

ससारी जीवोंक भद—

**समनस्काऽमनस्काः ॥ ११ ॥**

अर्थ—ससारी जीव समनस्क—मैनी और अमनस्क—असेनीक  
भेदस दो प्रकारक होत है ।

समनस्क—मनसहित जीव ।

अमनस्क—मनरहित जीव ॥ ११ ॥x

\* ज्ञानापयोग पशुशक्ता विकल्प सन्ति जायता हे और दर्शनापयोग  
विकल्पदिन जानता हे ।

x एकन्द्रियम लक्षर चतुरिन्द्रिय पयत तस्व जीव नियमस जैसा  
ज्ञान हे । त्रियस पञ्चिन्द्रियोंम मैना असेनी जानों जात ह । इय तीन  
व्यक्तियोंक जीव नियमस सती ही होत है ।

ममारी जाजके अय प्रकारसे भेद—

समारिणस्त्रसस्थावरा ॥ १२ ॥

अर्थ—( समारिण' ) ममारी जीव ( त्रसस्थावरा ) त्रस और स्थावरक भदस दो प्रकारक हैं ।

स्थावराके भेद—

पृथिव्यप्तेजोवायुरनस्पतय. स्थावरा ॥ १३ ॥

अर्थ—पृथिवीकायिक, त्रसस्थायक जगिस्तायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पाच प्रकारक स्थारर हैं । इनके निर्ण स्पर्शन इन्द्रिय होनी ह ।

स्थारर—स्थारर नामकर्मक उदयस प्राप्त हुइ जीवकी अत्रस्थ-विशेषको स्थारर कहत हैं ॥ १३ ॥

त्रस जीवाके भेद—

द्वीन्द्रियादयस्त्रमा ॥ १४ ॥

अर्थ—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियजीव त्रस कहलात हैं ।

त्रस—त्रस नामकर्मक उदयमे प्राप्त हुइ जीवकी अत्रस्थाविशेषको त्रस कहत हैं ॥ १४ ॥

इन्द्रियोंकी गणना—

पञ्चन्द्रियाणि ॥ १५ ॥

अर्थ—सत्र इन्द्रिया पाच हैं ।

इन्द्रिय—जिनसे जीवकी पहिचान हो उन्हें इन्द्रियां कहते

समारी जायासी गति और समय—

**विग्रहवती च समारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥**

अर्थ—(समारिण) समारी जीवकी गति (चतुर्भ्य प्राक्) चार समयस पहले पहले (विग्रहवती च) विग्रहवती और अविग्रहा दोनों प्रकारकी होती है ।

भाषार्थ—समारी जीवकी गति मोडा रहित भी होती है और मोडा रहित भी । जो मोडा रहित होती है उसमें एक समय लगता है । जिसमें एक मोटा लगा पड़ता है उसमें दो समय, जिसमें दो मोटा लेना पड़ते हैं उसमें तीन समय और जिसमें तीन मोटा लेना पड़ते हैं उसमें चार समय लगते हैं । पर यह जीव चौथे समयमें कहीं न कहीं नतीज शरीर नियमस धारण कर लेता है, इसलिये विग्रह गतिक्रम समय चार समयके पहले पहले तक कहा गया है ।\*

अविग्रहा गतिमा समय—

**एकममयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥**

अर्थ—(अविग्रहा) मोडा रहित गति (एकममया) एक समय मात्र ही होती है अर्थात् उसमें एक समय ही लगता है ॥२०॥

विग्रहगतिमें आहारक अनाहारकनी व्यवस्था—

**एक द्वौ त्रीन्वानाहारक ॥ ३० ॥**

अर्थ—विग्रह गतिमें जीव एक दो अथवा तीन समयतक अनाहारक रहता है ।

\* उक्त गतिथेन ४ भद्र हे-१ प्रदुर्गति (शुद्धगति) २ पाणिमुखा गति, ३ लाङ्गुलिका गति ४ शामूधिका गति ।

आहार—औदारिक वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा ६ प्याप्तियोंके योग्य पुद्गल परमाणुओंके ग्रहणको आहार कहते हैं ।

भावार्थ—जन्मक जीव उपर कहे हुए आहारको ग्रहण नहीं करता तन्तक वह अनाहारक कहलाता है । ससारी जीव अग्नि ग्रहा गतिमें आहारक ही होता है । किन्तु एक दो और तीन मोहा-वाली गतियोंमें क्रमसे एक दो और तीन समयतक अनाहारक रहता है । चौथे समयमें नियमसे आहारक हो जाता है ॥ ३० ॥

जन्मक भेद—

## सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

अर्थ—(जन्म) जेन्न, (सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा ) सम्मूर्च्छन गर्भ और उपपादक भन्स तीन प्रकारका होता है ।

सम्मूर्च्छन जन्म—अपन शरीरक योग्य पुद्गल परमाणुओंके द्वारा मातापिताक रज और वीर्यक बिना ही अवयवोंकी रचना होनको सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं ।

गर्भजन्म—हीक उत्तरमें रज और वीर्यक मिलनस जो जा होता है उसे गर्भजन्म कहते हैं ।

उपपाद जन्म—माता पिताके रज और वीर्यक बिना देन नाक कियोंक निश्चित म्यान-विशेष पर उत्पन्न होनेको उपपाद जन्म कहते हैं ॥ ३१ ॥

यानियाँके भद—

सचित्तगीतसवृता. सेतग मिश्रा-

श्रेऋशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—( सचित्तगीतसवृता ) समित्त गीत सवृत्त (संतरा )  
इन्से ऊट्टी तीन अचित्त उष्ण विवृत (च) ओर (एकश) एक एक  
कर (मिश्रा) करस मिली हुई तीन सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, सवृत्त,  
विवृत ये नो (तद्योनय) सम्मूर्डेन आदि ज भोंकी योनियाँ हे ।

सचित्तयानि —नीच सहित योनिका सचित्तयानि कहते हैं ।

सवृत्तयोनि—नो किमीक दखनम न आव एस जांरके  
उत्पत्ति स्थानको सवृत्तयोनि कहते हैं ।

विवृतयोनि—नो सभक दखनम आव उम उत्पत्ति स्थानको  
विवृतयोनि क'न है । शेष योनियोंका अर्थ स्पष्ट हे ॥ २२ ॥

गभजम किमके हाता है?—

जरायुजाण्डजयोताना गर्भ. ॥ ३३ ॥

अर्थ—जरायुच अण्डज और पोत न तान प्रकारक जीवोंक  
गर्भ जन्म ही दोना है। अथवा गर्भ जम उक्त जीवाक ही होता है ।

जरायुच—चाल्क समान माम और स्तनमव्याप्त एक प्रकारकी  
थेलीस लिपटे हुए जो जीव पैदा होने ह उ हे जरायुच कहते हैं—जैसे  
गाय भैम मनुष्य वौर\* ।

१—चाल्कको उत्पत्ति-स्थानको योनि कहते हैं। जम और यानियों  
आधार जावयवा अन्तर है ।

अण्डज—चा जीव अण्डेसे उत्पन्न हा, उन्हें अण्डज कहते हैं, जैसे चीकू कबूतर वगैरह पक्षी ।

पोत—पैदा होने समय जिन जीवोंका किसी प्रकारका आवरण नहीं हो और जो पैदा हात ही चलने फिरने लग जावें उन्हें पोत कहत हैं, जैसे हरिण सिंह वगैरह ॥ ३३ ॥

उपपाद जन्म किसके होता है ?—

**देवनारकाणामुपपाद ॥ ३४ ॥**

अर्थ—( देवनारकाणाम ) देव और नारकियोंक (उपपाद ) उपपाद जन्म ही होता है अथवा उपपाद जन्म देव ओर नारकियोंके ही होता है ।

सम्मूर्च्छन जन्म किसके होता है ?—

**शेषाणा सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥**

अर्थ—( शेषाणाम् ) गर्भ और उपपाद जन्मवानोंमे बाकी बचे हुए जीवोंक (सम्मूर्च्छनम्) सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है अथवा सम्मूर्च्छन जन्म शेष जीवोंक ही होता है । \*

नोट—एकान्द्रियस्य लेकर अमैत्री पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चका नियमसे सम्मूर्च्छन जन्म होता है । बाकी तिर्यञ्चोंक गर्भ ओर सम्मूर्च्छन दोनों होते हैं । लब्धपर्यन्तक मनुष्योंका भी सम्मूर्च्छन जन्म होता है ॥ ३५ ॥

शरीरोंके नाम व भेद—

**आदारिक्रवै क्रयिकाहारकृतैजम-**

**कार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥**

\* ऊपर कह हुए तानों-सूत्रोंमे ' पाप एव धनुष ' की तरह शरीरोंके नियम है ।

अर्थ—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कामण ये पाच शरीर हैं ।

औदारिक शरीर—स्थूल शरीर ( जो दृमरको उडे और दृमरसे छिड सक ) को औदारिक शरीर कहत है—ह मनुष्य और तिर्यञ्चोक हाता हे ।

वैक्रियिक शरीर—जिममें हल्क भारी तथा कइ प्रकारक रूप बनानकी शक्ति हो उमे वैक्रियिक शरीर कहते हैं । यह देव और नारकियोन हाता है । विक्रिया क्रद्धि इसस भिन्न है ।

आहारक शरीर—सूक्ष्मपदार्थक निर्णयक लिये वा सयमकी रक्षाक लिय छठवे गुणस्थानवर्ती जीवक मन्त्रस एक हाथका जो सफद रङ्गका पुतला निकलता है उमे आहारक शरीर कहत हैं ।

तैजस शरीर—जिसक कारण शरीरम तज रहे उसे तैजस शरीर कहते हैं ।

कामणशरीर—जानावरणादि आठ कर्मोंक समूहको कामण शरीर कहते हैं ।

शरीरारोहा सुव्यमताका वर्णन—

पर पर सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—पृथेस (पर परम्) आगे आगेक शरीर (सूक्ष्मम्) सूक्ष्म सूक्ष्म है । अथत् औदारिकस वैक्रियिक, वैक्रियिकस आहारक, आहारकसे तैजस और तैजससे कामण शरीर सूक्ष्म है ॥ ३७ ॥

शरीरोंके प्रदेशोंका विचार—

प्रदेशतोऽसख्येयगुण प्राक्तेजसात् ॥ ३८ ॥

अर्थ—(प्रदेशत) प्रदेशोंकी अपक्षा (तैनसात् प्राक्) तैजस शरीरसे पहले पहले शरीर (अमरयेयगुणम्) अमरयातगुणे है।

भावार्थ—औत्तरिक शरीरकी अपक्षा असम्यग्गुण प्रदेश (परमाणु) वैक्रियिकमें है और त्रैक्रियिककी अपक्षा अमरुष्यन्गुणे आहारकमें है।

अनन्तगुणे परे ॥ ३९ ॥

अर्थ—(परे) वाक्कीके दो शरीर (अनन्तगुणे) अनन्तगुण परमाणुवाले है। अथत् आहारक शरीरसे अनन्तगुणे परमाणु तैजस शरीरमें और तैजस शरीरकी अपक्षा अनन्तगुणे परमाणु कर्मण शरीरमें है\*।

तैजस और कर्मण शरीरकी विशेषता—

अप्रतिघाते ॥ ४० ॥

अर्थ—तैजस और कर्मण ये दोनों शरीर प्रतिघात बाधरहित हैं अथत् किसी भी भौतिक पदार्थसे न स्पर्श करते हैं और न किसीको रोक्त है ॥ ४० ॥

अनादिमम्वन्धे च ॥ ४१ ॥

अर्थ—और ये दोनों शरीर आत्माके साथ अनादि काश्मे सम्बन्ध रखनेवाले हैं।

नोट—यद् कथन सामान्य तैजस और कर्मणकी अपक्षा है

\* आगे आगेके शरीरमें प्रदेशोंकी अविद्यता हानपर भी उनका सन्निवेश लोक्षिष्यकी तरह समझा जाता है। इसलिये व वाक्योंमें अन्य रूप ~~...~~ दात है।



विशेषकी अपक्षा पहलक शरीरोंका सम्बन्ध नष्ट होकर उनके स्थानमें नये नये शरीरोंका सम्बन्ध जाना रहता है ।

**मूर्धस्य ॥ ४२ ॥**

अथ—य त्रेणो शरीर समस्त सप्तारी जीवोंक होते हैं ॥४२॥

एकमात्र एक जीवक मिते शरीर हो सकते हैं ?—

**तदादीनि भाज्यानि युगपदेकम्याचतुर्भ्य ॥ ४३ ॥**

अर्थ—( तदादीनि ) उन तजम और कर्मण शरीरको आदि लेकर ( युगपद् ) एकमात्र ( एकस्य ) एक जीवक ( आचतुर्भ्ये ) चार शरीरतक ( भाज्यानि ) विभक्त करना चाहिये । अथत् दो शरीर हा ता तजम और कर्मण तीन हां तो तैजस कर्मण और औदारिक अथवा तजम कर्मण और वैकिकिक, तथा चार हां तो तैजम कर्मण औदारिक और आहारक अथवा तैजम कर्मण औदारिक और वैकिकिक होत है ॥ ४३ ॥

कर्मण शरीरकी विशेषता—

**निरुपभोगपन्तदम् ॥ ४४ ॥**

अर्थ—(अन्न्यम्) अन्तका कर्मण शरीर ( निरुपभोगम् ) उपभोग रहित हाता है ।

उपभोग—इन्द्रियोंक द्वारा शब्दादिकक ग्रहण करनेको उपभोग कहते हैं ॥ ४४ ॥

औदारिक शरीरका लक्षण—

**गर्भममूर्च्छनजमाद्यम् ॥ ४५ ॥**

औपचारिक	२	औपचारिक	२१	पारणाभिक	२
१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७
८	८	८	८	८	८
९	९	९	९	९	९

औपचारिक  
१, २ आरिष

१ कवलचान  
२ श्वच्छदरोन

३ क्षायिक दान  
४ , छात्र

५ , भाग  
६ " उपमोग

७ " वीर्य  
८ " सम्यकत्व

९ , आरिष

ज्ञान

१ मति

२ श्रुत

३ अवधि

४ मत्-पर्यय

अज्ञान

१ कुमति

२ कुश्रुत

३ कुअवधि

दान

१ षणु

२ अणु

३ अवधि

४ उपमोग

कथि

१ दान

२ काम

३ भाग

४ उपमोग

५ वीर्य

सा० सम्यकत्वचारिष

संयमासंयम

गति

१ नरक

२ तिर्यग

३ मनुष्य

४ देव

कथाय

१ मोघ

२ मान

३ माया

४ काम

चिह्न

१ स्त्री

२ पुरण

३ मनुसक

मिथ्यादान

अज्ञान

असंयत

असिद्धत्व

देव्या

१ कृष्ण

२ नील

३ कापाठ

४ पीठ

५ पथ

६ गुण



अर्थ—( गर्भमम्बुर्छेदनम् ) गर्भ ओर सम्बुर्छेदन जन्मसे उत्पन्न हुआ शरीर ( आद्यम् ) औदारिक शरीर कहलाता है ॥ ४५ ॥

वैक्रियिक शरीरका लक्षण—

**ओपपादिकु वैक्रियिकम् ॥ ४६ ॥**

अर्थ—( ओपपादिकम् ) उपपाद जन्मसे होनेवाला देव नारकियोंका शरीर ( वैक्रियिकम् ) वैक्रियिक कहलाता है ॥ ४६ ॥

**लब्धिप्रत्यय च ॥ ४७ ॥**

अर्थ—वैक्रियिक शरीर लब्धि निमित्तक भी होता है ।

लब्धि—तपोविशेषसे प्राप्त हुई ऋद्धिको लब्धि कहते हैं ।

**तैजसमपि ॥ ४८ ॥**

अर्थ—तेजस शरीर भी लब्धि प्रत्यय ( ऋद्धिनिमित्तक ) होता है ।

नोट—यह तैजस शुभ अशुभके भेदसे दो प्रकारका होता है ।

आहारक शरीरका स्वामी च लक्षण—

**शुभ त्रिशुद्धमव्याघाति चाहागक प्रमत्तसयतस्येव ॥**

अर्थ—( आहागकम् ) आहारक शरीर ( शुभम् ) शुभ है अर्थात् शुभ कार्यको काता है ( त्रिशुद्धम् ) त्रिशुद्ध है अर्थात् त्रिशुद्ध कर्मका कार्य है ( च ) और ( अव्याघाति ) व्याघात-गणरहित है तथा ( प्रमत्तसयतस्येव ) प्रमत्तसयत छटके गुणस्थान वर्ती मुनिक ही होना ॥ ४९ ॥

लङ्ग ( वेद ) क राजा— —

नारकममूर्च्छिनो नपुमकानि ॥ ५० ॥

अर्थ—नारकी आर सम्मूर्च्छन जन्मवाले जीव नपुमक होते हैं ॥ ५०

न देवाः ॥ ५१ ॥

अर्थ—इन नपुमक नहीं होत । अथत् दोनोंमें स्त्रीलिंग और पुरुषलिंग ये दो ही लिंग होते हैं ॥ ५१ ॥

शेषास्त्रियेदा. ॥ ५२ ॥

अर्थ—शेष बचे हुए मनुष्य और तिरिच तीनों वेदवाले होने हैं ॥ ५२ ॥

अनात्ममृत्यु किन्तरा नहीं हाता ?

आम्रपादिकचरमोत्तमदेहाऽमरयेयवर्षायु-  
पोऽनपवर्त्यायुष ॥ ५३ ॥

अर्थ—उपपद जन्मवाले देव नारकी, तद्भवमाक्षगामियोंमें श्रेष्ठ तीथकर आदि तथा अमरपात वर्षाकी आयुवाले—भोगमूमिके जीव परिपूर्ण आयुवाले होते हैं अथत् इन जीवोंकी असमयम मृत्यु नहीं होती । ५३ ॥

॥ इति श्रीमद्गुमास्त्रामिरचिते माशशास्त्रे त्रितीयोऽध्याय ॥

प्रश्नावली ।

- (१) जीवन असाधारण भाग कितने हैं ?
- (२) इस समय तुम्हारे कितने भाग हैं ?
- (३) त्रिमहगतिमें जीव अनाहारक कबतक और क्यों रहता है ?
- (४) जन्म और योनिम क्या अंतर है ?

- (५) मनुष्यों के कौन कौन जन्म होते हैं ?  
 (६) तुम्हारे कितने शरीर हैं ?  
 (७) दवाओं के आधारक शरीर हो सक्ता या नहीं ?  
 (८) यदि आग आगरे शरीर अधिक अधिक प्रदशनाले हैं तो वे अधिक स्थानको क्या गर्दी घरात ?  
 (९) आप यह बात किमप्रकार जानते हैं कि अमुक व्यक्तिकी अममयम मृत्यु हुई है ?  
 (१०) नारकियाक कौनसा लिङ्ग हाना है ?

## तृतीय अध्याय ।

### अयोध्याका वर्णन ।

सात पृथिवीय नरक—

रत्नशर्कराचालुकापकधूमतमोमहातमप्रभा भूमयो  
 घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठा मसाधोऽधः ॥ १ ॥

अर्थ—(रत्नशर्कराचालुकापकधूमतमोमहातमप्रभा) रत्न-  
 प्रभा, शर्कराप्रभा, चालुकाप्रभा, पङ्कजप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और महा-  
 तमप्रभा, ये भूमिया (मस) सात हैं और क्रमसे (अधोऽधः) नीचे  
 नीचे (घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठा) घनोदधि वातप्रत्य, घनवातप्रत्य,  
 तनु वातप्रत्य और आकाशक आधार है ।

विशेष—स्वप्रभा पृथिवीक तीन भाग है १ स्वभाग, २ पङ्क-

१-रत्नप्रभा यदि पृथिवीक नाम सार्वक है । स्थितानाम है-१  
 २ वाता ३ मेघप्रत्य अन्नना, ४ अरिण, ५ मघवी और ७

( परा स्थिति ) उत्कृष्ट स्थिति क्रमसे ( एक त्रि सप्तदश सप्त-  
दश द्वाविंशति त्रयस्त्रिंशत्मागरोपमा ) एक सागर, तीन सागर  
मात सागर, दश सागर, सत्रह सागर, बाईस सागर और तेतीस सागर है ।

नाट—नरकौम भयानक दुःख होनेपर भी अममयमें मृत्यु  
नहीं होती ॥ ६ ॥

मध्यलोकका वर्णन ।

बुद्ध ढाप ममुद्राके नाम —

जम्बूद्वीपलवणोदादय शुभनामाना द्वीपममुद्राः । ७ ।

अर्थ—इस मध्यलोक (शुभनामान ) अच्छे अच्छे नामवाले  
(जम्बूद्वीपलवणादादय द्वीपममुद्रा ) जम्बूद्वीप आदि द्वीप और  
लवणसमुद्र आदि समुद्र हैं ।

भाषार्थ—सबके बीचमें थोड़ीक अकारका जम्बूद्वीप है, उसके  
चारों तरफ लवणसमुद्र है, उसके चारों तरफ घातकी रण्ड द्वीप है,  
उसके चारों तरफ कालोदधि समुद्र है, उसके चारों तरफ पुष्कर  
द्वीप है, उसके चारों तरफ पुष्कर समुद्र है । इस प्रकार एक दूसरेको  
घेरे हुये असंख्यात द्वीप समुद्र हैं । सबसे अन्तक द्वीपका नाम  
स्वयम्भूमण द्वीप और स्वयम्भूमण समुद्र है ॥ ७ ॥

द्वीप और समुद्रारा विस्तार और आकार—

द्विद्विविष्कम्भा पूवपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः । ८ ।

अर्थ—प्रत्येक द्वीप समुद्र दून दूने विस्ताराले पहले पहलेके  
द्वीप समुद्रको घेरे हुए तथा चूडीके समान आकारवाले हैं ॥ ८ ॥

जम्बूद्वीपका विस्तार और आकार—

तन्मध्ये मेघनाभिर्वृत्तो योजनशतमहस्रविष्कम्भो

जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

अर्थ—(तन्मध्ये) उन सब द्वीप समुद्रोंके बीचमें (मरुनाभि) \*सुदर्शन मरु है नामि विमका एसा तथा (वृत्त) आलीक समान गाल और (योजनशतमहस्रविष्कम्भ) एक लाख योजन विस्तार-वाला (जम्बूद्वीप) जम्बूद्वीप [ अस्ति ] है ॥ ९ ॥

सात क्षेत्राक नाम —

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यङ्गहैरण्यव-

तेरावतवर्षा. क्षेत्राणि ॥ १० ॥

अर्थ—इस जम्बूद्वीपमें भारत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवन, और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं ॥ १० ॥

\* सुदर्शन मरुकी उचाई एक लाख योजनका है। विमका \* हजार योजन नीचे चमनम और \* \* हजार योजन ऊपर है। इसका व्यास ४० योजनकी चुलिया है। सब जड़विम की ओरके नाममें २००० योजनका वन योजन लिया जाता है।

१ द्विजा मी गाल चोचरी परिधि उम्भी गागरसे कुछ अधिपर निगुना हुआ करता है। इस विष्कम्भ जम्बूद्वीपका परिधि तान लाख सोलह हजार दानी सत्ताहम योजन तीन कोण एकसौ अठारह धनुष और साठ तरह अष्टुत्स कुछ अधिक है।

०-इस द्वीपके विदेह क्षेत्रात्में उत्तर कुंड भगमूर्ति में अनादि निरुप प्रियीराध और अङ्गिम जम्बु-जामुनका वृक्ष है इभीलिय-इम्भ द्वीपका नाम जम्बूद्वीप पडा है।



क्षेत्राणां विभाग करनेवाले ६ कुलाचलांके नाम—

तद्विभाजिन' पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्नि-  
पधनीलरुक्मिशिरिणो वर्षवरपर्वताः ॥ ११ ॥

अर्थ—(तद्विभाजिन ) उन सात क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले  
(पूर्वापरायता ) पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे ( हिमवन्महाहिमवन्निपध-  
नीलरुक्मिशिरिण ) हिमवन्, महाहिमवन्, निपध, नील, रुक्म  
ओर शिरिन् य छट (वर्षवरपर्वता ) वर्षधर—कुलाचल पर्वत हैं ।  
वर्ष=क्षेत्र ॥ १० ॥

कुलाचलांके वर्ण—

हेमार्जुनतपनीयवैदूर्यरजतहेममया. ॥१२॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए पर्वत क्रमस सुवर्ण चानी, ताया हुआ  
सुवर्ण वैदूर्य (नील) मणि, चादी ओर सुवर्ण -से पीले हैं ॥१२॥

कुलाचलांका आकार—

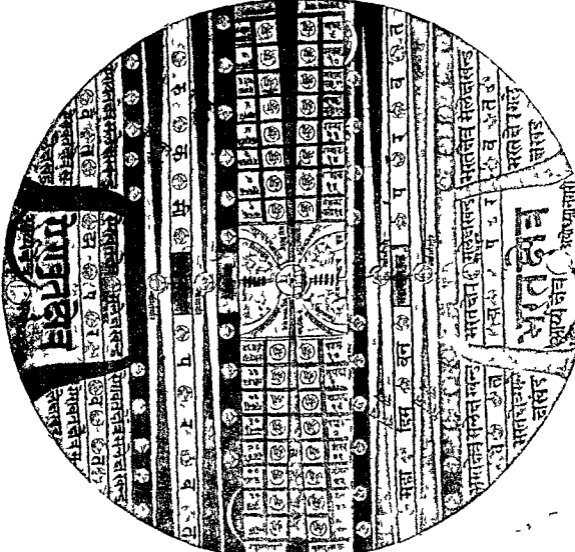
मणिविचित्रपार्श्वी उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः १३

अर्थ—व पर्वत (मणिविचित्रपार्श्वी ) कई तरहके मणियोंसे  
चित्रविचित्र हैं तट तिनक ऐसे तथा ( उपरि मूले च ) ऊपर नीचे  
ओर म' प्रमें (तुल्यवि तारा ) एकसमान विस्तारवाले हैं ॥१३॥

कुलाचलांका स्थित सगवरांके नाम—

पद्ममहापद्मतिगिञ्जकेशरिमहापुडरीकपुडरीका  
हृदास्तेपामुपर ॥ १४ ॥

अर्थ—( तपाम् उपरि ) उन पर्वतोंका ऊपर क्रमस ( पद्म  
महापद्म तिगिञ्ज केशरि महापुण्डरीक . पुण्डरीक हृदा ) पद्म,



भारत जीवन

आयुर्विभव

भारत जीवन मेलिचलवण्ड

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श
ष	स	ह	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ
ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ
ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ
ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ
ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ
ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ
ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ	ळ

भारत जीवन मेलिचलवण्ड

भारत जीवन मेलिचलवण्ड

भारत जीवन

भारत जीवन

आयुर्विभव

भारत जीवन मेलिचलवण्ड

भारत जीवन

आयुर्विभव



## हृदोका विस्तार आदि ।

नगर	हृद नाम	स्थान	लम्बाई	चौडाई	गहराई	कमल	देवी
१	पद्म	द्विमवत्	१००० यात्र	७०० योजन	१० योजन	१ योजन	श्री
२	महापद्म	महारिमवत्	००० यात्र	१००० यात्र	२० यात्र	२ योजन	श्री
३	तिगिञ्ज	निपथ	६० यात्र	२००० यात्र	४० योजन	४ यात्र	श्रुति
४	रानी [दिगदिन्]	नील	४०० योजन	२००० यात्र	४० यात्र	४ योजन	शक्ति
५	महापुष्कर	रविमन्	१००० योजन	१००० यात्र	३० यात्र	२ यात्र	शुद्धि
६	पुष्कर	निर्गमन्	१००० यात्र	७०० यात्र	१ यात्र	१ यात्र	लक्ष्मी

# नरक व्यवस्था ।

याध्याय—

न०	पृथिव्या	प्रस्तार	विल	नारीरका ऊर्ध्वार्ध	लेदया	शीताष्ण वेदना	उत्कृष्ट आयु	जयन्म आयु
१	रत्नप्रभा	१३	३०००००००	७ धनुष ३ हाथ ६ अंगुल	अध्वय कापात	उष्णज्वना	१ सागर	दश हजार वर्ष
२	शङ्कराप्रभा	११	२५०००००००	१० धनुष २ हाथ १२ अंगुल	मध्यम कापात	"	३ सागर	१ सागर
३	वाट्प्रभा	०	१०००००००	३१ धनुष १ हाथ	उत्कृष्ट कापात अध्वय नीच मयम नील	"	७ सागर	३ सागर
४	पद्मप्रभा	७	१०००००	६२ धनुष २ हाथ	उत्कृष्ट नील	उष्ण	१७ सागर	१० सागर
५	धूमप्रभा	८	३०००००	१५ धनुष	अध्वय उष्ण	शीत	२२ सागर	१७ सागर
६	तम प्रभा	३	१९९५	२७ धनुष	मध्यम उष्ण	शीत	२३ सागर	२२ सागर
७	महातम प्रभा	१	८	७०० धनुष	उत्कृष्ट उष्ण	शीत	२३ सागर	२२ सागर

नाट—१ यह लक्ष्मणा नाम 'स्वायुष प्रमाणव्युता द्रव्येभ्यो उता । भावद्वया स्वन्दमुत्परिवर्तिय' इति सर्वोर्ध्वदिक्के मतो गुणः  
 रत्ना है; गोमयप्रभा तथा धवलशिलावत्क मत्तानुत्तर सभी नारियोंके विग्रह गतिमें मुक्त, अपर्याप्तिक अवस्थामें प्रपोत, तथा पर्याप्तिक अवस्थामें  
 ण्य द्रव्य लक्ष्मणा होती है। और भावद्वयशाए, उष्ण, नील तथा कापोत होती हैं जिनका क्रम ऊपर चाटम बनलाया गया है ।

महापद्म, तिर्गिच्छ, कगारिन्, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नामके हृत्  
स्वर हैं ॥ १४ ॥

प्रथम सरासरका लम्बाई चांशः—

प्रथमो योजनसहस्रायामस्नद्विगुणो हृत् ॥ १५ ॥

अर्थ—( प्रथमहृत् ) पद्म स्तम्भ ( याननमहस्रायामः )  
एक हजार योजन लम्बा और ( तद्विगुणम् ) लम्बाईस बराब  
अथत् पाचमौ यानन विस्तारवाला है ॥ १५ ॥

प्रथम सरासरका गहराई—

दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अर्थ—पद्म स्तम्भ दश योजन गहरा है ।

उत्तम मध्यम क्या है ?—

तन्मये योजन पुष्परम् ॥ १७ ॥

अर्थ—उत्तम नीचम एक योजन विस्तारवाला कमल है ॥ १७ ॥  
महापद्म आदि सरोवर तथा उग्रम रहनेवाले श्रमणोंका प्रमाण—  
तद्विगुणद्विगुणा हृदाः पुष्पराणि च ॥ १८ ॥

अर्थ—आगर सरोवर और कमल क्रमसे प्रथम सरोवर तथा  
उसके कमलस दून दून विस्तारवाले हैं ।

नोट—यह दून दूनका क्रम तिर्गिच्छ नामक तीसरे स्तोत्र  
तक ही है । उत्तम आगेक तीन सगरा और तीस कमल दक्षिणके  
सरोवर और फलगोंक समान विस्तारवाले हैं ॥ १८ ॥

कमलमि रहनवाला छह दनिया—

तन्निवामिन्या दन्व श्रीहीधृतिर्नीतिबुद्धिलक्ष्म्यः  
 प्लयोपमस्थितय ममामानिकपरिपत्का ॥ १९ ॥

। अर्थ—( प्लयोपमस्थितय ) एक पदकी आयुवागी तथा  
 ( ममामानिकपरिपत्का ) सामानिक और पाण्डित् जातिक दगोंस  
 सहित ( श्रीहीधृतिर्नीतिबुद्धिलक्ष्म्य ) श्री. ही धृति, नीति बुद्धि  
 और लक्ष्मी नामकी ( दन्व ) दावया क्रमस ( तन्निवामिन्या )  
 उन सरारोंक कमलों क नामम कता है ।\*

चोदह महागनियोंक नाम—

गगामिबुगेहिद्रोहितास्पाहरिद्धरिकातामीतामीतो-  
 दानारीनरकातासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदा  
 मरिन्तन्म यगा. ॥ २० ॥

अर्थ—गगामिबु गगान् राहिताम्बा, हरिद्धरिकाता, सीता सीतादा गगी गका ना मुर्णकृण रूप्यकला और रक्ता रक्तादा  
 ये चोदह गदिया चम्पूदीपक पूर्वोक्त सात क्षेत्रोंक वाचम बहनी हैं ।

। विशेष—ए ल पद्म और छठमें पुण्डरीक नामक सरोवरस क्रमस  
 आदि और अन्तकी तीन तीन नदिया निकरी हैं तथा बाकाक  
 सरोवरोंसे ने ने गनिया निकरी है । नदियों और क्षेत्रका क्रम

\* उक्त कमलमी वाणनाक मयभागम एक वाण गने ताषनाग  
 चौद और कुठ कम एक वाण ऊचे सफर रगक भवन धन हुए हैं  
 उन्दीम वे देखिया रहता हैं । तथा उन्हीं तालनाम चो अन्य परिवार  
 कमल है उनपर सामानिक जीर पाण्डित् देव रन्ने हैं ।

उम प्रकार है—भरतम—गङ्गा सिन्धु, हैमवतम—रोहिन् रोहिताम्बा,  
हरिमं—शक्ति श्रिकाता, विदेहमे—सीता सीतोष्ण, रम्यमं—गरी  
नगकान्ता, हेमव्यन्तमे—गुण्डूला रुप्यदूला और ऐगवतमे रक्ता-  
स्तोष्ण गनी है ॥ २० ॥

नदियोंने वहनेका क्रम—

**द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥**

अर्थ—सूत्रक क्रमानुसार गङ्गा सिन्धु इत्यादि दो दो नदि-  
योंमें प्रथम नगराली नदिया पूर्वेसमुद्रम जाती हैं। जैसे गङ्गा सिन्धुम  
गङ्गा आदि ॥ २१ ॥

**शशास्त्रपरगाः ॥ २२ ॥**

अर्थ—शशी नदी हु मत नदिया पश्चिमकी आग जाती है  
जैसे—गङ्गा सिन्धुम सिन्धु आदि ॥ २२ ॥

महा-नदियादी सहायक नदिया—

**चतुर्दशानदीमहस्रपरिवृता गंगासि पादयो नत्र २३**

अर्थ—गङ्गा सिन्धु आदि नदियाक युगल चौदह हजार सदा-  
यक नदियोंस घिर हुए हैं ।

नोट—सहायक नदियोंका क्रम भी विदेहक्षेत्र तक आगे  
अगेक दुआमें प्रवेक युगोंसे दूना दूना है । और उत्तरके तीन  
क्षेत्रोंमें दक्षिणके तीन क्षेत्रोंक समान है ॥ २३ ॥

नदी युगल—

सहायक नदी मरणा—

गङ्गा सिन्धु

१४ हजार

रोहिन् रोहितास्या



हरित् हरिकान्ता	५० हजार
मीता मीताया	१ लाख बारह हजार
नारी नरका ता	२० हजार
सुवर्णमूला ऋष्यमृगा	३१ हजार
स्ता म्नीया	१४ हजार

भरतत्रयस्य विस्तार—

भरत पञ्चविंशतिपञ्चयोजनशतविस्तार  
पटु चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥ २४ ॥

अर्थ—( भरत ) भरतश्च ( पटुविंशतिपञ्चयोजनशत-  
विस्तार ) पाचमौ छ मीस योजन विस्तारयाला ( च ) जोर ( योजनस्य )  
एक योजनस्य ( एकानविंशतिभागा ) इतीम भागस्य ( पटु )  
छट भाग अधिक है ।

भाष्य—भरतस्यैका विस्तार ५०० इत्ये वाचन है ॥ ४ ॥\*

आगेके शत्रु और पयताया विस्तार—

तद्विद्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षपरवर्षा  
विदहाता. ॥ २५ ॥

अर्थ—( विदहान्ता ) विद्व शत्रु पर्यन्तक ( वर्षपरवर्षा )

\* भरत जोर भरायत भेगस बीचम पुन व वशिन तक लग्य दिनयाध  
पयत है । शिवा गङ्गामिधु गेर म्कारकाया नदियाक कारण तान्त  
शत्रोस छ छ म्कार हावान ह । उनम बीचका आथगण्ट और गपक  
पंच म्कार सट म्कारन । ताथसर जाति पयतायाया पुन्य भरत  
भरायतस आथगण्टम और विदह शत्रुमें जयतार एन ह ।

पर्यन्त ओर क्षेत्र ( तद्विगुणद्विगुणा ) भक्तक्षेत्रमे दून दून विस्तार-  
वाले हैं ॥ २५ ॥

विष्णु क्षेत्रके आगेके पर्यन्त ओर क्षेत्रांका विस्तार—

उत्तरा दक्षिणतुल्या ॥ २६ ॥

५५—विष्णु क्षेत्रस उत्तमके तीन पर्यन्त ओर तीन क्षेत्र दक्षि-  
णरु पर्यन्त ओर क्षेत्रोंक समान विस्तारवाले हैं ।

उनका क्रम इस प्रकार है—

क्षेत्र ओर पर्यन्त—	विस्तार—	उत्तराई—	गहराई
भक्त क्षेत्र	५२ इ० यात्रन	+	+
विष्णुत् कुलाचल	१ २० $\frac{१}{२}$	१०० यो	२५ यो
हैमवन्त क्षेत्र	२१०५ इ०	+	+
महाविष्णुत्कुलाचल	४२१० $\frac{३}{४}$	१० यो	५० यो
शक्ति क्षेत्र	८२२ $\frac{३}{४}$	+	+
निषध कुलाचल	१ ८२० $\frac{१}{२}$	१००० या	१०० यो
विष्णु क्षेत्र	३३६८ $\frac{१}{२}$	+	+
नील कुलाचल	१६८२० $\frac{१}{२}$	१००० यो	१०० यो
सम्यक् क्षेत्र	८४२० $\frac{३}{४}$	+	+
रक्ति कुलाचल	४२१० $\frac{३}{४}$	२०० या	५० यो
हैरण्यवन्त क्षेत्र	२ ०५ इ०	+	+
विष्णुत् कुलाचल	१०२२ $\frac{३}{४}$	१०० यो	२५ यो
ऐरावन्त क्षेत्र	५२६ $\frac{१}{२}$	+	+

भग्न और ऐरावत क्षेत्रमं काटवन्तः पश्चिमतः—

भरतैरावतयोर्बृद्धिहासौ पद्ममयाभ्यामु

त्सपिण्यसपिणीभ्याम् ॥ २७ ॥

अर्थ—( पद्ममयाभ्याम् ) छह कल्लोसे युक्त ( उत्सर्पिण्य-  
सपिणीभ्याम् ) २ सपिणी और अरसापणाक द्वारा ( भरतरावतया )  
भग्न और ऐरावत क्षेत्रमं जीवाक अनुभव आदिकी ( बृद्धिहासा )  
वन्ती तथा घृणता होनी रहती है ।

भाषार्थ—वीत काटाफाटी सागरक एक कालकाल होता है ।  
उसक दो भेद हैं— १ उत्सर्पिणी—निम्न जीवाक ज्ञान आदिकी  
बृद्धि हासी है और २ असपिणी—निम्न जीवाक ज्ञान आदिका  
हास गता है । असपिणीक छह भेद हैं— १ सुपमसुपमा, २ सुपमा  
३ सपदपमा ४ सुपमसुपमा ५ दुपमा और अतिदुपमा ।  
इसी प्रकार उत्सर्पिणीक भी अतिदुपमाक जति लकर छह भेद हैं ।

इन छह भेदाक कालका नियम निम्न प्रकार है—

१ सुपमसुपमा—चार काडाकाडी सागर, २ सुपमा—तीन  
कोडाकोटी सागर, ३ सुपदपमा—दो कोडाकोटी सागर ४ दुपमा  
सुपमा—द्वयालीम हजार बर्ष कम एक काड काडी सागर ५ दुपमा-  
इकीम हजार बर्ष, ६ अतिदुपमा—इकीम हजार बर्ष । भग्न ओ  
ऐरावत क्षेत्रमं इन छह भेद सहित उत्सर्पिणी और असपिणीक  
परिवर्तन होना रहता है । असागरात असपिणी वीत जानक बाद  
एक दुपमासपिणी काल होता है । अभी दुपमासपिणी काल च  
रहा है ॥ २७ ॥

नोट—भग्न और ऐरावत क्षेत्र मन्वन्धरी मन्वन्धराण्डों तथा

विचार्य पर्वतका श्रेणियोंम अक्षरपिपी कालक समय चतुर्थ कालके  
आदिसे लेकर अन्ततक परिवर्तन होना है और उत्तर्पिपी कालके  
समय तृतीय कालक अन्तमे लकर आदि तक परिवर्तन होता है ।  
इनमें आर्यगण्टाकी तम उहो कालका परिवर्तन नहीं होना और न  
इनम प्रत्येक काल पन्ना है ।

अन्य भूमियाका व्यवस्था—

ताभ्यामरा भूमयोऽवस्थिता. ॥ २८ ॥

अर्थ—(ताभ्याम्) भूत और ऐगवनक विभाग (अपरा)  
अन्य (भूमिया) क्षत्र (अवस्थिता) एक ही अवस्थामें रहते हैं—  
उनम कालका परिवर्तन नहीं होता ॥ २८ ॥

हिमवान् वाति श्रेणामे आयुषा व्यवस्था—

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हिमवतकहागिरिर्षक-

दवकुरवका ॥ २९ ॥

। अर्थ—हिमवान्, दारिर्षक और दवकुर ( विदेहक्षेत्रके  
अन्तित एक विभाग स्थान ) क निगानो मनुष्य तिर्यञ्च कल्पे एक  
पत्न, दो पत्न्य और तीग पत्न्यकी आयुमाले होते हैं ।\* ॥ २९ ॥

हिमवतक आदि श्रेणामे आयुषा व्यवस्था—

तथोत्तराः ॥ ३० ॥

अर्थ—उत्तरक क्षेत्रोंम र नगले मनुष्य भी हिमवान् आदिके  
मनुष्योंक समान आयुमात्र होते हैं ।

\* इन तीन क्षत्रोंम मनुष्योंक शरारत ऊँचर क्रमम एक दो और  
तीन वंशक हाता है । शरारत उच्च क्रमम नाल, पुत्र जीव पीत होता है ।

मात्रार्थ— हैरण्यमनक्षेत्रकी रचना, हैमवतक्षेत्रके समान, रम्भक क्षेत्रकी रचना हरि क्षेत्रके समान और उत्तरकुम्भ ( विष्णुक्षेत्रके अन्तर्गत स्थानविशेष ) की रचना प्रभुके समान है । इस प्रकार उत्तम मध्यम और जम्भ्यरूप तीनों भोग भूमियोंके दा दा क्षेत्र हैं । जम्बुद्वीपमें ६ भोग भूमियां और जगई द्वीपमें कुल ३० भोगभूमियां हैं ॥३०॥\*

त्रिदशक्षेत्रमें आयुकी परस्य—

विदेहेषु नारयेयकाला, ॥ ३१ ॥

अर्थ—विष्णुक्षेत्रमें मनुष्य और तिर्यक्ष्ण स्मृत वर्धनी आयु-काले होते हैं ॥ ३१ ॥ +

भरत वज्रदा अन्य प्रकारसे विस्तार—

भरतस्य विष्कम्भा जम्बुद्वीपस्य

नवतिशतभाग, ॥ ३२ ॥

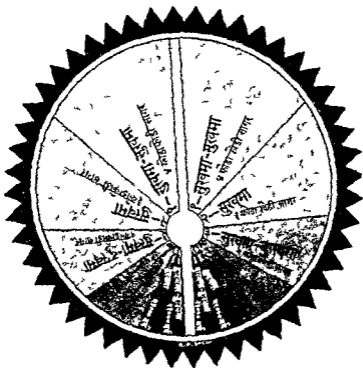
अर्थ—भरतक्षेत्रका विस्तार जम्बुद्वीपके एकसौ नव भाग है ।

नोट—२४ वें सूत्रमें भरतक्षेत्रका जो विस्तार बतलाया है उसमें और इसमें कोई भेद नहीं है । सिर्फ कथन करनेका प्रकार दूसरा है । यदि एक लासक एकसौ १० हिस्समें किये जाय तो उनमें हर एकके प्रमाण ५० ६० योजन होगा ॥ ३२ ॥

\* जिनमें सर सरका भागापभागकी नाममात्र बन्धुभासे प्रज्ञ होती है उ० ६ भागभूमि उ० १ ।

+ विदेहक्षेत्रमें उत्तरदि पश्चिमा धनुष और जातु २ बराह १० पूर्वदि होती हैं

# काल-चक्र ।



अवसर्षिणी काल

[ युग-परिवर्तन-चित्र ]



घातकीखण्डका वर्ण—

द्विर्घातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

अर्थ—घातकीखण्ड\* नामक दृमो द्वीपम क्षेत्र, तुलाचल, मर, गग ॥३३॥ मन्मन् पलायकी रचना जम्बूद्वीपमे द्वीप द्वीप है ॥३३॥

पुष्कर द्वीपका वर्णन—

पुष्करद्वे च ॥ ३४ ॥

अर्थ—पुष्करद्वे द्वीपम भी जम्बूद्वीपकी अपक्षा सप्त रचना द्वीप द्वीप है ।

विशेष—पुष्कर द्वीपका विस्तार १६ लाख याचन है, उमर ठीक नीचम चूटीक आकार मानुषोत्तर पर्वत पडा हुआ है जिसस इस द्वीपक दो गिन्स होगये हैं । पूर्वार्धमें सप्त रचना घातकीखण्डक समान है और जम्बूद्वीपम द्वीप द्वीप है । उम द्वीपक उत्तरतुट प्रातमें एक पुष्कर (कमल) है उमक संयोगम ही उमका नाम पुष्करक द्वीप पडा है ॥ ३४ ॥

मनुय खर—

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या ॥ ३५ ॥

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वतक पत्ते अधत् जम्बूद्वीपम है। मनुष्य

\* राज म ७ द्वीप लक्षणम्बुका धरे हुए है । इन्का विस्तार चार लाख याचन है । उमके उत्तरतुट प्रातम घनका (जीला) का रण है उम संयोगम इन्का नाम घातकी खण्ड पडा है ।

१-उमके उत्तरतुट घातकीखण्ड कलादधि । इन्का उत्तर अर्ध द्वीप का रण है । इन्का विस्तार ४





अर्थ—मनुष्योंकी उत्पत्ति स्थिति तीसरी पत्र और चतुर्थस्थिति  
अन्तर्मुहूर्तकी है ॥ ३८ ॥

तिर्यग्जाती स्थिति—

तिर्यग्योनिनामा च ॥ ३९ ॥

अर्थ—तिर्यग्योंकी भी उत्पत्ति और चतुर्थ स्थिति प्रथम तीन  
पत्रों और अन्तर्मुहूर्तकी है ।

॥ इति श्रीमद्भारविश्वविदित्वाचार्य महाराजकृतं तृतीयं अध्यायं ॥

### प्रश्नावली ।

- ( १ ) नारकियाक दु र्गोंका जगन कर उरकी उत्पत्ति आयु बताओ ।
- ( २ ) जम्बूद्वीपका परिधि कितना है ?
- ( ३ ) कर्मभूमि और भागभूमि क्षेत्र बताओ ।
- ( ४ ) धातकी चण्ड द्वारका चित्र बताओ ।
- ( ५ ) गङ्गा, सीतादा, रजोदा और हरिफान्ता नदियोंका निरालने  
तथा घटनका स्थान बताओ ।
- ( ६ ) मानुषोत्तर पर्वत कहाँ है ?
- ( ७ ) मनुष्योंका मूल घटाने करने वाली उत्पत्ति और चतुर्थ  
आयु बताओ ।
- ( ८ ) आप किस क्षेत्रमें रहते हैं ?
- ( ९ ) जम्बूद्वीपका भूतलक्षणा नक्शा बताओ ।
- ( १० ) तीर्थद्वार किस किस क्षेत्रमें जन्म लेते हैं ?

## चतुर्थे अध्याय ।

मन्त्राङ्क भेद—

देवाश्चतुर्णिजायाः ॥ १ ॥

अर्थ—एतत् चार समूहों में हैं अथत् देवोंके चार भेद हैं—  
१ भवतवासी २ यन्त्र ३ ज्यातिपी और ४ वमानिक ।

मन्त्र—चो द्यगति नाम कर्मक उत्पत्ती सामर्थ्यम नाना द्वीप समुद्र तथा पर्वत आदि रमणीय स्थानों पर क्रीडा कर व देव कल्याण है ॥ १ ॥

भवतत्रिक मन्त्रिं देव्यानां विभाग—

आदितस्त्रिषु पीतातलेऽथा ॥ २ ॥

अर्थ—एतत्के तीन निकायोंमें पीतान अथत् ब्रह्म, नील, सफेद और पीत ये चार लक्षणाएँ होती हैं ॥ २ ॥

चार निशाधकै प्रभेद—

दशाष्टपचद्वादशैर्वरुणा ऋत्पोपपन्नपर्यता ॥ ३ ॥

अर्थ—रुद्रोपपन्न (मोलहों स्वर्गतकके देव) पर्यन्त उक्त चार प्रकारके देवोंके क्रमसे दश आठ पाच और बारह भेद हैं ॥ ३ ॥

चार प्रकारके देवोंके सामान्य भेद—

इन्द्रमामानिकत्रायस्त्रिंशत्पारिपदात्तरक्षलोकपाला-  
नीकप्रकीर्णकाभियोग्य किल्बिषिकाश्चेकश ॥ ४ ॥

अर्थ—उक्त चार प्रकारके देवोंमें प्रत्येकके इन्द्र सामानिक, त्रायस्त्रिंशत् पारिपदा, आरमक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्बिषिक ये दश भेद होते हैं ।

इन्द्र—जो देव दूमेरे दमोंमें जी रहनशाली अग्निमा आदि ऋद्धियोंसे सश्रित हो उसे इन्द्र कहते हैं। ये देव राजाक तुल्य होने हैं।

सामानिक—जिनकी आयु वीर्य भाग उपभोग आदि इन्द्रक तुल्य हो पर आज्ञारूप एवम्यसे रहित हों उन्हें सामानिक कहत हैं। ये देव पिता—गुरके तुल्य होत हैं।

त्रायस्त्रिंश—जा देव मत्री पुगेहितक म्यानपन हों उन्हें त्रायस्त्रिंश कहने हैं। ये देव एक इन्द्रकी मभाम स्त्रीम ही होत हैं।

पारिषद—जो देव इन्द्रकी मभाम बैठनवाले हा उन्हें पारिषद कहत हैं।

आत्मभक्ष—जो देव अह्नभक्षक मह्य फल है उर आभरग कहते हैं।

लोकपाल—जो देव कोनरात्मक मभान लोकशा पालन करत हैं उन्हें लोकपाल कहत हैं।

अनीक—जा देव पदानि आदि मात तर्हकी मनामें विभक्त रहत ह व अनीक कहलाते हैं।

प्रकीर्णिक—जो देव नगरामियोंक ममान हा उन्हें प्रकीर्णिक कहते हैं।

आभियोग्य—जा देव दासाक समान सवारी आदिके काम आवें व आभियोग्य हैं।

किल्बिषिक—जा देव चांडालादिकी तरह नीच काम करनवाले हों उन्हें किल्बिषिक कहने हैं।

व्यतर और ज्यातिषी देवोंम इन्द्र आदि भेदाकी विशेष—

त्रायस्त्रिंशलोकपालवज्या व्यतरज्योतिष्काः

अर्थ—उत्पत्तिशब्द—सूर्य चंद्रमा इत्यादि जो प्रकीर्णक ताराक भद्रम पान प्रकारक हैं ।

नाट—उत्पत्तिशब्दोंका निगम मन्थनाकर मभयगतसे ७०० यात्रतका रण्डिम लकर ९०० यात्रतका उचड नक आकाशम है ॥ १२ ॥

उत्पत्तिशब्दोंका विभाग घणत—

मरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृत्तारु ॥ १३ ॥

अर्थ—मरु कह ल्य उत्पत्तिशब्द (नृत्तारु) मनुष्यताकमें (मरुप्रदक्षिणा) मरु पवनका प्रविष्टा न्न हुए (नित्यगतय) हमगा गमन करत न है ॥ १३ ॥

तन्त्रत कालविभाग ॥ १४ ॥

अर्थ—(कालविभाग) घण घण तिन गत आदि शर तकाका विभाग (तन्त्रत) उत्पत्तिशब्दोंका उत्पत्तिशब्दोंका द्वोग किया गया है ॥ १४ ॥

बहिरस्थिता ॥ १५ ॥

अर्थ—मनुष्यशेक—अच्छे द्वारास वाद्यक उत्पत्तिशब्दोंके स्थिर हैं ॥ १५ ॥

उत्पत्तिशब्दोंका विभाग—

वैमानिका. ॥ १६ ॥

अर्थ—अत्र यत्राम वैमानिक शब्दोंका वर्णन शुरू होना है ।

क्रिया	पर्याय शब्द	२३	२४	२५	२६	२७	२८
आदित्य	"	२३	२४	२५	२६	२७	२८
अग्नि	"	"	"	"	"	"	"
अग्निदेवता	"	"	"	"	"	"	"
प्रवास	"	"	"	"	"	"	"
अभिमान	"	"	"	"	"	"	"
अभिमान्य	"	"	"	"	"	"	"
अभिचारावत	"	"	"	"	"	"	"
अभिचारी	"	"	"	"	"	"	"
अनुसर	"	"	"	"	"	"	"
विजय	२ क्षय	३ क्षय	"	"	"	"	"
क्षय	"	"	"	"	"	"	"
प्रयत्न	"	"	"	"	"	"	"
अपराधिन	"	"	"	"	"	"	"
अनाधिकारि	"	"	"	"	"	"	"

(१) तस्यैव शब्दोंके १२ भेद द्वाराकी अपेक्षा है १२, २, ३, ४ तथा १३, १४, १५ और १६ व स्थान प्रत्येक एक एक रूप द्वारा तथा मध्यके ८ स्थानोंमें सुगल मुलकें रूप हैं।

(२) पूर्वत स्थान आ लौकिक दश रहते हैं उनमें आसु ८ आगरी होती हैं।

देवगति व्यवस्था [ वैमानिक देव ]

देव	नियमास	भेद	रुद्र	लेख्या	द्वाराकीर्तयार	वर्ष्य आयु	सं आयु	प्रवीच्यार
कल्प								
सौम्य-एवान	उष्णोष्णक	१२	२४	दीन	७ क्षय	शुद्धिक २ सागर	३ " २ सागर	काय
दान-सुभा-सादर				दीन-अथ	५ क्षय	" " ३ " २ सागर	" " ३ " २ सागर	द्वारा
भद्र-सकासर				पयलक्षणा	५ क्षय	" " ३ " २ सागर	" " ३ " २ सागर	रूप
रान्दुव-कावियर				पय-सुक्र	५ क्षय	" " ३ " २ सागर	" " ३ " २ सागर	"
सुभ-सक्षर्युक				सुक्र	३३ क्षय	" " ३ " २ सागर	" " ३ " २ सागर	सुन्द
प्रवार-वाररार					३ क्षय	" " ३ " २ सागर	" " ३ " २ सागर	सुभ
अनन-संयार					३ क्षय	" " ३ " २ सागर	" " ३ " २ सागर	"
भारवा-अपुन					३ क्षय	" " ३ " २ सागर	" " ३ " २ सागर	"
प्रवरपक								
सुप्रान				सुक्र	३ क्षय	०३ सागर	२२ " ३ " २ सागर	अनगाचार
अमाय				"	२ क्षय	" " ३ " २ सागर	२२ " ३ " २ सागर	
सुववद				"	२ क्षय	" " ३ " २ सागर	२२ " ३ " २ सागर	
संगाध				"	२ क्षय	" " ३ " २ सागर	२२ " ३ " २ सागर	
सुभद				"	२ क्षय	" " ३ " २ सागर	२२ " ३ " २ सागर	
विदा				"	२ क्षय	" " ३ " २ सागर	२२ " ३ " २ सागर	
सुभ				"	२ क्षय	" " ३ " २ सागर	२२ " ३ " २ सागर	
सुभ				"	२ क्षय	" " ३ " २ सागर	२२ " ३ " २ सागर	
सुभ				"	२ क्षय	" " ३ " २ सागर	२२ " ३ " २ सागर	

विमान—जिसे रत्नवात्र देव जानको विग्रह पुण्यात्मा  
ममों उँ विमान कहते हैं और विमानोंम जो पग हों उँ वैमानिक  
कहन है ॥ १६ ॥

वैमानिक देवोंके भेद—

कल्पोपपन्ना. कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

अर्थ—वैमानिक देवोंके दो भेद हैं—१ कल्पोपपन्न और २  
कल्पातीत । चिनम इन्द्र आदि रत्न भेदोंकी कल्पना होती है एम  
सेह स्वर्गको कल्प कहते हैं । उनम जो पदा हों उँ कल्पोपपन्न  
कहत है । और जो मोहये स्वर्गम आग पदा हों उँ कल्पातीत  
कहत है ॥ १७ ॥

रत्नका स्थितिक्रम—

उपर्युपरि ॥ १८ ॥

अर्थ—मोहये स्वर्गके आठ युग, नव प्रेवयक, नव अनुत्तिश  
योग पाच अनुत्तर ये सब विनाय क्रमम ऊपर ऊपर है ॥ १८ ॥

वैमानिक देवोंके रहनेका स्थान—

मौर्वेभोजानमानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलातवका-  
पिष्ठशुक्रमहाशुक्रमतागमहस्त्रारिष्वानतप्राणतयोरा-  
रणान्युतयोर्नगमुग्रैषकपु विजयैजयत्तनयता-  
पराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

अर्थ—मौर्वर्ष—एगान, मानत्कुमार—माहेन्द्र, ब्रह्म—ब्रह्मोत्तर,  
लान्तव—कापिष्ठ, शुक्र—महाशुक्र, रातार—सद्भार इन छह युगलोक



चारह स्वर्गोंमें, आनन—प्राणन इन ७ स्वर्गोंमें, पारण—अच्छुत इन दो स्वर्गोंमें, नव त्रैलोक्यके १ मानोंमें, नव अनुच्छिन्न विमानोंमें और विजय वैश्वान्त जयन्त अपगन्त नवा मन्त्रार्थमिच्छिन्न पाच अनुत्तर विमानोंमें वैमानिक देव रहत हैं ।

नोट—इस मूत्रमें यद्यपि अनुच्छिन्न विमानोंका पाठ नहीं है तथापि 'नवसु' इम पत्रमें उनका घण्टा कर्म ज्ञाना चाहिये ॥१९॥

वैमानिक देवोंमें उत्तराक्षर अत्रिना—

**स्थितिप्रभासमुखत्रुतिलेङ्गाविशुद्धीन्द्रियाधि-  
विषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥**

अर्थ—वैमानिक— १। सु प्रभास, मुख, द्युति, लक्ष्मीकी विशुद्धता, इन्द्रियविषय और अत्रिनाक्षर विषय इन सबकी अपेक्षा ऊपर ऊपरके विमानोंमें अधिक अधिक है ॥ २० ॥

वैमानिक देवोंमें उत्तराक्षर हानना—

**गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीना ॥ २१ ॥**

अर्थ—ऊपर ऊपर देव, गति, शरीर, परिग्रह और अभिमानकी अपेक्षा हीन हीन हैं ।

नोट—सोल्हें स्वर्गोंमें आगक देव अपने विमानकी छोड़ कर अन्यत्र कहीं नहीं जात ॥२१॥

१ नवत्रैलोक्य—सुदामन, जमाष सुप्रसुद यशाधर, सुप्रद विशाल, सुमन, शैमल, और प्रातिहर ।

२ नव अनुच्छिन्न—आदित्य, अर्चि अर्चिमाली त्रैलोक्य प्रभास, अर्चिप्रभ अर्चिमथ्य अर्चिराजन और अर्चिविनिष्ठा ।

वैमानिक देवों के उड़ाने का क्रम इस प्रकार है—

स्वर्ग	हाथ	स्वर्ग	हाथ
१-२	७	१३-१४	३३
३-४	६	१५-१६	३
७-८	५	अधोग्रयक	२३
९-१२	४	मध्यग्रयक	२
		उपरिग्रयक, अनुदिश	१३
		अनुत्तर विमान	१

वैमानिक देवों के उड़ाने का वर्णन—

**पीतपद्मशुक्लेश्या द्वित्रिंशत्पु ॥ २२ ॥**

अर्थ—( द्वित्रिंशत्पु ) दो युगल, तीन युगल तथा ओपक समस्त विमानों का क्रम ( पीतपद्मशुक्लेश्या ) पीत पद्म और शुक्लेश्या होती है ।

विशेषार्थ—पहले और दूसरे स्वर्ग में पीतेश्या, तीसरे और चौथे स्वर्ग में पीत और पद्मेश्या पांचवें, छठवें, सातवें, आठवें स्वर्ग में पद्मेश्या, नवम, दशम, ग्यारहवें, और बारहवें स्वर्ग में पद्म और शुक्लेश्या तथा गण समस्त विमानों में शुक्लेश्या है । अनुदिश और अनुत्तर १४ विमानों का क्रम शुक्लेश्या होती है ॥ २२ ॥

क्या मन्त्र कहा जाता है ?

**'प्राग्ग्रैयकेभ्यः कल्पा ॥ २३ ॥**

अर्थ—( ग्रैयकेभ्यः प्राक् ) ग्रैयकों से पहले पढ़ने का १६ स्वर्ग (कल्पाः) क्या कहा जाता है । इनसे आगे का विमान बरसती है ।

हैं । नमोऽस्यैक वगैरहक देव एतन्मान वेभरक धारी होते हैं और वे अमिन्द्र कल्पते हैं ॥ २३ ॥

लौकिक देव—

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका ॥ २४ ॥

अर्थ—ब्रह्मलोक (पाचमा स्वर्ग) हे आलय (निवासस्थान) निरुक्ता एव लौकिक देव हे ।

नाट—ये देव ब्रह्मलोक अन्तम रते हे अथवा एक महा-वचारी होनम लोक (समाप्त) का जत (नाश) करणवाले होत हे, इसलिये लौकिक कल्पत हे । य द्वादशाङ्क पाठी होत हे, ब्रह्मचारी रहते हे और तीर्थकार निर्भे तप कल्याणम जाते हे । उन्हें 'देवर्षि' भी कहते हे ॥ २४ ॥

लौकिक देवाके नाम—

सारस्वतादित्यवह्यरुणगर्दतोयनुपिताव्यावाधा-  
रिष्टाश्च ॥ २५ ॥

अर्थ—१ सारस्वत, २ आदित्य, ३ वह्नि, ४ अरुण, ५ गर्द-तोय, ६ तुपित ७ अथावाध और ८ अरिष्ट ये आठ लौकिकदेव हैं । ब्रह्मलोककी एशान आदि आठ दिशाओम रते हे ॥ २५ ॥

अनुदिश तथा अनुत्तरपाला देवाम अयत्तरया नियम—

विजयादिषु द्विचरमा ॥ २६ ॥

अर्थ—विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित तथा अनुक्ति विमानोंक अमिन्द्र द्विचरम होते हे अथात् मनुष्य दो जन्म लेकर निय-

मसे मोक्ष चत्रे जात है । किन्तु मरार्थमिद्विक अहमिद्र एक नवाव-  
त्तारी ही होत है ॥ २६ ॥

तिर्यञ्च कौन हैं ?

**ओपपादिकमनुष्येभ्य जेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥**

अर्थ—उष्णत् नमराठ—दम नारकी तथा मनुष्योंसे अतिरिक्त  
जीव (तिर्यग्योनय ) तिर्यञ्च हैं । तिर्यञ्च ममस्त समारम व्याप्त है  
एतु त्रम जीव त्रम गलीम ही रहत है ।

मयनरासी दवांश उन्वृष्ट आयुका वणन—

**स्थितिरसुरनागमुपर्णद्वीपशेषाणा मागरोपमत्रिप-  
ल्योपमार्द्धहीनमिताः ॥ २८ ॥**

अर्थ—मयनरासियोंम असुरकुमार, नागकुमार, मुष्णीकुमार,  
द्वीपकुमार और शेष छह कुमारकी आयु क्रमस १ म ७ ० पल्य,  
२३ पर्य और १३ पल्य है ॥ २८ ॥

धैमानिक दवांश उन्वृष्ट आयु—<sup>१</sup>

**सौधर्मैज्ञानयो. मागरोपमे अधिक ॥ २९ ॥**

अर्थ—सौधर्म और एज्ञान स्वर्गक दवोंकी आयु ये सागरसे  
बुढ अधिक है ।

नोट—यथा 'सागरापमे इम द्विवचान्त प्रयोगस ही दो  
सागर अत्र क्रिया जाता है ॥ २० ॥

१—यद्यपि मयनरासिनाक बाद यन्तर और व्य तिरी दवांश जायु  
गलानेना क्रम है तथापि लायक रयथात्म यथा क्रम मद्भ कर धैमानिक  
दवांश जायु रहत रह है ।

सानत्कुमारमाहेद्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अर्थ—सानत्कुमार ओर माहेद्र स्वर्गम देवानी आयु सात सागरस जुठ अधिक ह ।

नाट—इस सूत्रम अधिक शक्तकी अनुवृत्ति पूरे सूत्रस हुई है ॥ ३० ॥

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपचदशभिरधिकानि  
तु ॥ ३१ ॥

अर्थ—अगिफ युगलाम ७ सागरस क्रमपूर्वक ३।७।९।११।१३ ओर १५ सागर अधिक आयु है । अथत् ब्रह्म और त्रयोत्त स्वर्गम १० सागरस जुठ अधिक, लान्तम ओर कापिष्ट स्वर्गम १६ सागरस जुठ अधिक, शुक्र ओर महाशुक्र स्वर्गम १६ सागरस जुठ अधिक, मनार ओर महारार स्वर्गम १८ सागरसे जुठ अधिक,\* आन ओर प्राणन स्वर्गम २० सागर तथा आरण और अन्युत स्वर्गम २० सागर उच्छ्रित स्थिति है ॥ ३१ ॥

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकन नवमु ग्रैयकेषु विजया-  
दिषु मर्गार्थमिद्धा च ॥ ३२ ॥

अर्थ—(आरणान्युतात्) आरण ओर अन्युत स्वर्गम (ऊर्ध्वम) ऊपर (नवमु ग्रैयकेषु) नव ग्रैयकेषु (त्रिनयादिषु) त्रिनय आदि

\* सूत्रम 'तु' शब्द हानक कारण अधिक शक्तता मन्त्रम गारहने स्वग रक ल हाता ह कथकि पातायुन जीवानी उत्पत्ति-यही तरु हाता है ।

चार विमान तथा नव अनुत्तगोम ( च ) और ( सर्वार्थसिद्धौ )  
सर्वार्थसिद्धि विमानम ( एकैकम् ) एक एक सागर बटती हुई आयु  
है अथान् पहले अवयवम् १२ सागर, दूमेम २४ सागर आदि,  
अनुत्तगोम ३२ सागर और अनुत्तगम २३ सागर उच्छ्रित स्थिति है।

नोट—मृतम सर्वार्थसिद्धौ इन पदको विज्ञापित्से पृथक्  
कहनस म्चित होना है कि सर्वार्थसिद्धिम सिद्ध उच्छ्रित स्थिति ही  
होती है ॥ ३२ ॥

स्वर्गमें ज्ञान आयुसा यणर—

अपरा पत्योपममत्रिकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—सौधर्म जौग एगान स्वर्गम न्यय आयु एक फलसे  
कुछ अधिक है\* ॥ ३२ ॥

परत परत पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥ ३४ ॥

अर्थ—( पूर्वापूर्वा ) परत पहल युगलकी उच्छ्रित आयु  
( परत परत ) आगे आगे युगलम ( अनन्तरा ) ज्ञान्य आयु  
है। जैम साधर्म आगे एगान स्वर्गकी जा उच्छ्रित आयु कुछ अधिक  
तो सागरकी है यह सानन्दुमाग गार माहद्र स्वर्गमें ज्ञान्य आयु है।  
वसी कमम आगे जान्ना चान्थि । सर्वार्थसिद्धिम ज्ञान्य आयु नहीं  
होती ॥ ३४ ॥

गारणियानी जघन्य आयु—

नारकाणा च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥

X आदि शब्द प्रकारधर' हानत अनुत्तगम भी मृत्यु हाता है।

\* जमग्यात वर्षोंसा एक पय होना है और दश कोडाकोडी पन्नोंसा  
एक सागर हाता है।

अर्थ—और इसी प्रकार दूसरे आदि नरकोंमें भी नारकियोंकी जघन्य आयु है । अथ तू पहले नरकी उत्कृष्ट आयु दूसरे नरकी जघन्य आयु है । इसी तरह समस्त नरकमें जानना चाहिये ॥३५॥

प्रथम नरकका प्रथम आयु—

**दशवर्षमहस्त्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥**

अर्थ—पहले नरकमें नारकियोंकी प्रथम आयु दस हजार वर्षोंकी है ॥ ३६ ॥

भजनगामियोंकी जघन्य आयु—

**भजनेषु च ॥ ३७ ॥**

अर्थ—भजनगामियोंमें भी जघन्य आयु दस हजार वर्षोंकी है ॥ ३७ ॥

व्यतराकी उत्तम आयु—

**व्यतराणा च ॥ ३८ ॥**

अर्थ—व्यतर दलोंकी भी जघन्य स्थिति दस हजार वर्षोंकी है ॥ ३८ ॥

अन्तर्गता उत्कृष्ट आयु—

**परा पत्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥**

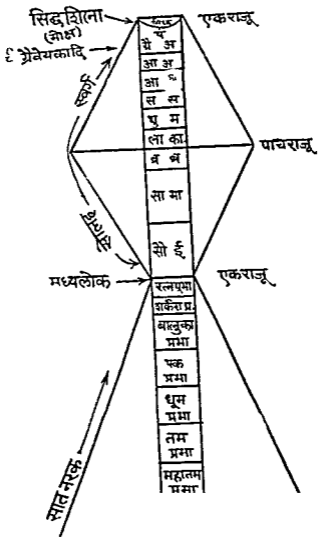
अर्थ—अन्तर्गता उत्कृष्ट आयु परा पत्यम कुछ अधिक है ॥ ३९ ॥

ज्योतिष्का उत्कृष्ट आयु—

**ज्योतिष्काणा च ॥ ४० ॥**

अर्थ—ज्योतिषी दलोंकी भी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक परा पत्यकी है ॥ ४० ॥

## तीन लोक-रचना।







ज्यातिषी देशांसी जघन्य आयु—  
तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

अर्थ—ज्योतिषी देशांसी जघन्य आयु उस एक पर्यक आठवे भाग है ॥ ४१ ॥

लौकान्तिक देशांसी आयु—  
लौकान्तिकानामष्टौ मागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—(सर्वेषाम्) मास्त (लौकान्तिकानाम्) लौकान्तिक देवोंकी जघन्य और उच्छृष्ट आयु (अष्टौ मागरोपमाणि) आठ सागर-प्रमाण है ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमद्भगवत्सामिबिरचित मोक्षशास्त्रे चतुर्था अध्याय ॥

## प्रश्नावली ।

- ( १ ) भवनत्रिकम लक्ष्याण कौत ० होती ह ?
- ( २ ) साहस्ये स्वगम आगम दन प्रतीचारक त्रिवा सुयी त्रिम तरह रहत है ?
- ( ३ ) मामानिक, आत्मरक्ष और त्रित्विष चातिक द्रोंर लक्षण बताओ ।
- ( ४ ) स्वर्गलाङ्का नरणा र्गीचकर यथास्थान मय वयरम्या दशाओ
- ( ५ ) सत्रा प्रसिद्धिम जघन्य त्रिमि त्रिमि ती है ?
- ( ६ ) व्यन्तर दन कर्हा रहत ह ?
- ( ७ ) अत्राद् द्वापम त्रितन म्युय और त्रितन चन्द्रमा ह ?
- ( ८ ) दिन आन्तिका त्रिभाग त्रिमम हाता है ?
- ( ९ ) स्वगम दिन रात होत ह या नहीं ?
- ( १० ) लौकान्तिक द्रोंसी त्रिना आयु है ?

## पंचम अध्याय ।

अचारतत्त्वमा वर्णन—

अर्जापकाया धर्माधर्माकाशपुद्गला ॥ १ ॥

अथ—( अर्जापकाशपुद्गला ) धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार ( अर्जापकाया ) अचार तथा बहुप्रसंगी हैं ।

नोट—इस सूत्रम बहुप्रसंगी नहीं हानमे कार द्रव्यका ग्रहण नहीं किया है\* ॥ १ ॥

द्रव्याणां गणना—

द्रव्याणि ॥ २ ॥

अथ—उक्त चार प्रसंगी द्रव्य हैं । द्रव्यका लक्षण आगे सूत्रोंमें कहा जावगा ॥ २ ॥

जीवाश्च ॥ ३ ॥

अर्थ—जाव भी द्रव्य है ।

नोट—यहां 'जीवा' इस बहुवचनम जीव द्रव्यक अनरु भेद सूचित होते हैं । इनक मिसाय ३० वे सूत्रम कारद्रव्यका भा कथन हागा । इसलिय इन सनको मिलान पर १ जावद्रव्य २ पुद्गल द्रव्य, ३ धर्मा द्रव्य, ४ अधर्म द्रव्य, ५ आकाश द्रव्य और ६ कालद्रव्य ये छह द्रव्य होते हैं ॥ ३ ॥

\* जा द्रव्य मत्तस्य हानर बहुप्रसंगी हा उह जस्तिनाय कहते है । ये पाच हैं—१ जाव २ पुद्गल ३ धर्म, ४ अधर्म और ५ आकाश ।

—द्रव्याका विशेषता—

**नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥**

अर्थ—ऊपर कहे हुए सभी द्रव्य नित्य, अवस्थित और अस्थायी हैं। कभी नष्ट नहीं होना इसलिये नित्य हैं अपनी १ मस्याका उल्लापन नहीं करते, इसलिये अवस्थित हैं और रूप, रस, गंध तथा स्पर्श रहित हैं इसलिये अस्थायी हैं ॥ ४ ॥

पुद्गलद्रव्य अरूपा नहा हैं—

**रूपिण. पुद्गला. ॥ ५ ॥**

अर्थ—पुद्गल द्रव्य रूपी अर्थात् मूर्तिरहित हैं।

नोट—यद्यपि सूत्रम सिर्फ पुद्गलको रूपी बतलाया है पर माह-चर्यस रस गंध तथा स्पर्शका भी ग्रहण होनाता है ॥ ५ ॥

द्रव्याके स्वमेवैवा गणना—

**आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥**

अर्थ—आकाश पर्यंत एक एक द्रव्य है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्म-द्रव्य और आकाशद्रव्य एक एक हैं। जीवद्रव्य अनन्त हैं, पुद्गलद्रव्य अनन्तानन्त हैं और कालद्रव्य असंख्य ( अणुरूप ) हैं ॥ ६ ॥

**निष्क्रियाणे च ॥ ७ ॥**

अर्थ—धर्म, अधर्म, जाग आकाश ये तीनों द्रव्य क्रियारहित हैं। क्रिया—एक स्थानम दूसरे स्थानम प्राप्त होनाका क्रिया कहते हैं।

नोट—धर्म और अधर्म द्रव्य समस्त लोकाकाशम व्याप्त हैं तथा आकाशद्रव्य लोक और अलोक दोनों जगह व्याप्त हैं इसलिये अन्यक्षेत्रका अभाव होनेस इनमें क्रिया नहीं होता ॥ ७ ॥

द्रव्याके प्रदशांश यजन—

**अमरयेयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥ ८ ॥**

अर्थ—( धर्माधर्मैकजीवानाम् ) धर्म अधर्म और एक जीव  
द्रव्यक ( अमरयेया ) अमर्यात ( प्रदेशा ) प्रदश हान ह ।

प्रदेश—चित्तन क्षेत्रका एक पुद्गल परमाणु रोकना है उत्तन  
क्षेत्रको एक प्रदश क्तन है ।

नाट—मत्र चीर द्रव्याक अनन्तानन्त प्रदश होत है इसलिये  
सुत्रम एक चीरका ग्रण किया है ॥ ८ ॥

**आकाशस्यानन्ता ॥ ९ ॥**

अर्थ—आकाशक अनन्त प्रदश है । परन्तु लोकाकाशक  
अमर्यात ही है ॥ ९ ॥

**सरयेयाऽमर्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥ १० ॥**

अर्थ—( पुद्गलानाम् ) पुद्गलोंक ( मर्येयाऽमर्येया च )  
मर्यात अमर्यात और अनन्त प्रदश है ।

शङ्का—नव लोकाकाशम अमर्यात ही प्रदश है तत्र उसम  
अनन्त प्रदशान्ते पुद्गल द्रव्य तथा शेष द्रव्य किमतरह रह सकेंगे ?

समाधान—पुद्गलद्रव्यम तो लोकाका परिणमन होता है—एक  
सू म आर दूसरा भ्यूह । जब उसम क म परिणमन होता है तब  
लोकाकाशक एक प्रदेशम भी अनन्त प्रदेशान्ता पुद्गल स्थान  
था लेता है । इसक सिवाय समस्त द्रव्योंम एक दूसरको अवगाहन  
देनकी सामर्थ्य है, निमित्ते अल्प क्षेत्रम ही समस्त द्रव्योंक विनासमें  
कोई बाधा नहीं होती ॥ १० ॥

## नाणो ॥ ११ ॥

अर्थ—पुद्गलक परमाणु रू द्वितीयान्तिक प्रयेग नहीं है अथवा वह एकप्रदेशी ही है ॥ ११ ॥

समस्त द्रव्योंके रहनेका स्थान—

## लोकाकाशेऽवगाह. ॥ १२ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए समस्त द्रव्योंका अवगाह (स्थान) लोकाकाश है ।

लोकाकाश—आकाश चित्त निम्न जीव जादि दृष्टो द्रव्य पाण जावे उनन निम्नको लोकाकाश कहत है । बाकी निम्ना अलोकाकाश कहलाता है ॥ १२ ॥

## धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

अर्थ—धर्म और अधर्म द्रव्योंका अवगाह तिलम तैलकी तरह समस्त लोकाकाश है ॥ १३ ॥

## एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

अर्थ—(पुद्गलानाम्) पुद्गल द्रव्योंका अवगाह (एकप्रदेशादिषु) लोकाकाशक एक प्रदेशको लेकर समस्त अमस्यान प्रयोगोंमें (भाज्य) विभाग करने योग्य है ॥ १४ ॥

## अमरयेवभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

अर्थ—(जीवानाम्) जीवोंका अवगाह (अमरयेवभागादिषु) लोकाकाशक अमर्यात्वे भागस लेकर सम्पूर्ण लोक क्षेत्र है ॥ ... ॥

प्रश्न—जब कि एक जन्म द्रव्य अमर्यात प्रदीप है तब वह एकक अमर्यातमें भाग्य केस रह जाता है ? समाधान—

### प्रदेशमहारविमर्षाभ्या प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—( प्रदीपवत् ) तीपक प्रकाशकी तरह ( प्रदेशम-  
हारविमर्षाभ्याम् ) प्रदशाक मरुत और विमर्षके द्वारा जब  
गकाकाक अमर्यातमें आति भाग्यम रहता है अथत् जिसतह  
एक बड़े मकाम तीपक रग दनस उमका प्रकाश समस्त मकानमें  
फर जाता है और उसी तीपकको एक छाटस वर्ननक नीकर रख  
वास उमका प्रकाश उमीम मनुचिन होकर रह जाता है उमी तरह  
जीव भी चितना बडा या छाटा गरीर पाता है उमम उनना ही  
विस्तृत या मनुचिन होकर रह जाता है । परन्तु कवनी मनुद्धाते  
अमर्याम सम्पूर्ण लोकाकाशम व्याप्त हो जाता है ओर भिड अमर्याम  
अन्तिम गरीरसे टुट कम रहता है ॥ १६ ॥

धम और अरुध द्रव्यका उपकरण या लक्षण—

### गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपरकार. ॥ १७ ॥

अर्थ—स्वयमव गमन तथा स्थितिको प्राप्त हुए जीव और  
पुद्गलको गति तथा स्थितिम सहायता दना क्रमस धर्म अधर्म द्रव्यका  
उपरकार है ।

भाषार्थ—जो चीर और पुद्गलको चलनमें सहायक हो उसे

१ मूत्रासारको न छाडकर शम्भके प्रदेशोंके गहर निरालनको  
समुद्रमा कन्त हैं ।

धर्म द्रव्य तथा जो छहरनम सहायक हो उसे अधम द्रव्य कहते हैं ॥१७॥

आकाशका उपकार या लक्षण—

आकाशस्यापगाह. ॥ १८ ॥

अर्थ—ममस्त द्रव्योंको अपगाश दना आकाशका उपकार है।

भाषार्थ—ना सर द्रव्योंको छहरनक लिय स्थान त्व उसे आकाश कहते हैं ॥ १८ ॥

पुद्गल द्रव्यका उपकार—

अरीरवाद्मन प्राणापाना. पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

अर्थ—औद्योगिक आदि शरीर, वचन, मन तथा श्व माच्छ्वास ये पुद्गलद्रव्य उपकार ह अपन् गीगदिनी गचना पुद्गलसे ही होती है ॥ १९ ॥

सुरसदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

अर्थ—इन्द्रियजन्म सुख दुःख नीचन और मरण ये भी पुद्गल द्रव्यक उपकार हैं ।

नोट १—मम मम जो उपकार शब्दका ग्रहण किया है उसे सूचित होता है कि पुद्गल परम्परम एक द्रव्यका उपकार करने हैं जैसे—गख कासका पानी रोहका, सातुन कपडेका आदि ।

नोट २—यहा उपकार शब्दका अर्थ निमित्त मात्र ही समझना चाहिए अन्यथा दुःख मरण आदि उपकार नहीं कहलावेंगे ॥२०॥

जीवितका उपकार—

परस्पगोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥





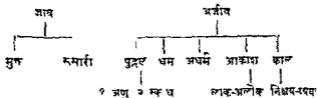


# पञ्चम



# द्रव्यविभाग ।

द्रव्य



श्रम

म्यारर

हीन्द्रिय, प्रीन्द्रिय चतुस्रिन्द्रिय, पञ्चन्द्रिय पृथ्वी जल तज वायु वतस्पति

संज्ञा

अम्यैनी

नरक

तिर्यञ्च

मनुष्य

देष

- १ रत्नप्रभागत
- २ शक्तिप्रभागत
- ३ बालुकाप्रभागत
- ४ पर्वकप्रभागत
- ५ धूमप्रभागत
- ६ तम-प्रभागत
- ७ महातम-प्रभागत

- जलघर  
स्थलघर  
वमधर

- आयि
- १ बुद्धि
  - २ विप्रिया
  - ३ तप
  - ४ म्क
  - ५ औपधि
  - ६ रस
  - ७ अशील

- अनुकृतिगत
- १ क्षेत्र
  - २ अणु
  - ३ अणु
  - ४ अणु
  - ५ अणु

एतन्तु क्



विशेष—ये चारों गुण टरएक पुद्गलम एकमाथ रहते हैं । इनके उक्त भेद इस प्रकार है —

स्पर्शके आठ भेद—१ कोमल, २ कठोर, ३ हल्का, ४ भारी, ५ शीत, ६ उष्ण, ७ खिन्न और ८ स्थिर ।

रसके पाच भेद—१ रसदा, २ मीठा ३ कडुआ, ४ कषा-  
य्य और ५ चण्ण ।

गन्धके दो भेद—१ सुगन्ध और २ दुर्गन्ध ।

वर्णके पाच भेद—काला, नीला पीला लाल और सफ़ेद । ये वीच पुद्गलक गुण कहलाते हैं । क्योंकि हमारा जमीन रहते हैं ॥२३॥

पुद्गलका पयाय—

इन्द्रवधमौक्ष्म्यस्थोत्पमस्मानभेदतमश्लया-  
तपोद्योतमन्तश्च ॥ २४ ॥

अर्थ—उक्त लक्षणवात् पुद्गल-शब्द वाच्य मूल्यता, स्थूलता, सम्पत्ता (आकार), भ्रूण-गन्धकार दया, आतप और उद्योत सहित हैं । अथवा ये पुद्गलकी पयाय हैं ॥ २४ ॥

पुद्गलके भेद—

अणव. स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥

अर्थ—पुद्गलद्वय अणु और स्कन्ध इस प्रकार दो भेदका है ।

अणु—निम्न दूरग विभाग १ होमक एम पुद्गलको अणु कहते हैं ।

स्कन्ध—दो तीन सन्ध्यात अमन्त्रात तथा अनन्त परमाणुओंके पिण्डको स्कन्ध कहते हैं ॥ २५ ॥

स्वधांकी उत्पत्ति का कारण—

**भेदमघातेभ्य उत्पद्यते ॥ २६ ॥**

अर्थ—पुट्टलद्रयस्वक्थ भेद-विद्युत्ने, सघात-मिग्न और भेद सघात-दोनास उत्पन्न होते हैं । जैसे १०० परमाणुवाला स्वक्थ है उसमें १० परमाणु विस्फोट जानसे ०० परमाणुवाला स्वक्थ बन जाता है और उसीमें १० परमाणु मिल जानसे ११० परमाणुवाला स्वक्थ बन जाता है और उसीमें एकमात्र दश परमाणुओंके विद्युत्ने और १५ परमाणुओंके मिल जानसे १०५ परमाणुवाला स्वक्थ बन जाता है ।

नोट—सम द्विवचनस्वप्नानम जो ग्रहवचनरूप प्रयोग किया है उसीसे यह तीसरा अर्थ व्यक्त हुआ है ॥ २७ ॥

अणुका उत्पत्ति का कारण—

**भेदादणु ॥ २७ ॥**

अर्थ—अणुकी उत्पत्ति भेदसे ही होती है ॥ २६ ॥

चाक्षुष ( दग्नेयाग्न्य-स्थूल ) स्वप्नकी उत्पत्ति—

**भेदमघाताभ्या चाक्षुषः ॥ २८ ॥**

अर्थ—(चाक्षुष) चतुर्द्वयसे दग्नेय योज्य स्वप्न (भेद-संघाताभ्याम्) भेद और सघात दोनोंसे ही उत्पन्न होता है । अक्ले भेदसे उत्पन्न नहीं होसकता ॥ २८ ॥

द्रयका लक्षण—

**सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥**

अर्थ—द्रव्यका लक्षण सत् ( अस्तित्व ) है ॥ २९ ॥

सतका लक्षण—

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् ॥ ३० ॥

अर्थ—जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य पर महित हो वह सत् है।

उत्पाद—द्रव्यम नवीन पयायकी उत्पत्तिको उत्पाद कहते हैं।

जैसे मिट्टीकी पिण्डपर्यायसे घटका।

व्यय—पृथक्पयायक विभागको व्यय कहते हैं जैसे घटपर्याय उत्पन्न होने पर पिण्डपयायक।

ध्रौव्य—दोनों पयायामें मौजूद रहनको ध्रौव्य कहते हैं। जैसे पिण्ड तथा घट पयायम मिट्टीका ॥ ३० ॥

नित्यता लक्षण—

तद्भावव्यय नित्यम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो द्रव्य तद्भावरूपसे अव्यय है वही नित्य है।

भावार्थ—प्रत्यभिज्ञानक हेतुको तद्भाव कहत हैं। जिन द्रव्यको पहल समयम देखाऊ जाद दूसरे आदि समयोंमें देखापर ' यह वही है निम्ने फले देखा था ' एसा जोडरूप जान हो वह द्रव्य नित्य है। परन्तु यह नियता पदार्थम सामान्य म्बहूपकी अपक्षा होती है, विशय अथत् पयायकी अपक्षा सभी द्रव्य अनित्य हैं। इसलिये समासक सप्त पदार्थ नित्यानित्यरूप हैं ॥ ३१ ॥ \*

\* "नित्य तदवदमित्यप्रधानेन नियममव्यतिपत्तिभिरे"।

न तद्विरुद्धाद्विद्वन्तानिभिरनैमित्तिकयोगतस्त ॥

( समतभद्र



प्रश्न—एक ही उद्यम नित्यता और अनित्यता य दो विरुद्ध धर्म किमपकार रहते हैं ? समाधान—

### अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥

अर्थ—विप्रश्चित और अविप्रश्चित रूपसे एक ही उद्यममें नाना धर्म रहते हैं। वक्ता जिम उद्यमको करनेकी इच्छा करता है उसे अर्पित-विप्रश्चित कहत है। और उम्मा उम समय जिम धर्मको नहीं कहना चाहता है वह अनर्पित अविप्रश्चित है। नेम वक्ता यदि द्रव्यार्थिक नयस्य वस्तुका प्रतिपादन करगा तो नित्यता विप्रश्चित बहटावगी और यदि पयायार्थिक नयमे प्रतिपादन करगा ता अनित्यता विप्रश्चित है। जिम समय किसी पदार्थका द्रव्यकी अपस्था निय कहा जा रहा हे उसी समय वह प्यार्थ पयायकी अपक्षा अनिय भी है। पिता, पुत्र, मामा, भानना गान्धी तरह एक ही पदार्थम अनरु धर्म रहेनपर भी विरोध नहीं आता ॥ ३२ ॥ \*

परमाणुभाके बध हानमें कारण—

### स्निग्धरूक्षत्वाद्धधः ॥ ३३ ॥

अर्थ—चिकनाई और मृग्यपनक निमित्तस दो तीन आदि परमाणुआका बध होता ह।

बध—अनक पदार्थोंम एकपनका ज्ञान बगनगले सम्बध-विशेषको बध कहत ह ॥ ३३ ॥

---

\* 'तन्नागमनि यग रुच रसाद्वयाद मिद्वान्त' का मूलभूत है। पाठक दही मथनराशि ग पी आदिना उदाहरण दकर त्रिप्रार्थियोंको विवशा, अस्विशा गीणता, मुग्धता आदिका स्वरूप समझानेकी वाशिदा करे।

## न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—जघन्य गुण सहित परमाणुओंका बंध नहीं होता ।

गुण—स्निग्धता और रूक्षताक अविभागापत्तिच्छदों ( जिसका दृसग टुकड़ा न हो सक ऐस अणों ) को गुण कहते हैं ।

जघन्य गुणमहित परमाणु—निम परमाणुम स्निग्धता और रूक्षताका एक अविभागी अण हो उसे जघन्य गुण सहित परमाणु कहते हैं ॥ ३४ ॥

## गुणाम्ये महजानाम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—गुणोंकी समानता होन पर समान जातिवाले परमाणुके साथ बंध नहीं होता । जैसे दो गुणवाले स्निग्ध परमाणुका दूमे दो गुणवाले स्निग्ध परमाणुके साथ बंध नहीं होता ।

नोट—सूत्रम “ सन्शानाम् ” इस पदक अणस प्रकट होता है कि गुणोंकी निपमतामें समानजातिवाले अथवा भिन्न जातिवाले पुद्गलोंका बंध हो जाता है ॥ ३५ ॥

बंध किन्तु होता है ?—

## द्वयधिकादिगुणाना तु ॥ ३६ ॥

अर्थ—किन्तु दो अधिक गुणवालोंके साथ ही बंध होना है । अर्थात् बंध तभी होगा जब एक परमाणुसे दूमे परमाणुमें २ अधिक गुण हों । जैसे दो गुणवाले परमाणुका चार गुणवाले परमाणुके साथ बंध होगा, इससे अधिक व कम गुणवालेके साथ नहीं होगा । यह बन्ध स्निग्ध स्निग्धता, रूक्ष रूक्षता और स्निग्ध रूक्षता भी होता है ॥ ३६ ॥

## बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥

अर्थ—(च) रंग (रघे) बन्धन अग्रधाम (अधिकी) अधिक गुणराग परमाणु रोंको अपन रूप (पारिणामिकी) परिणामाने-वाल नेत है । जैसे गीला गुड अपन साथ बन्धका प्राप्त हुए रजको गुडरूप परिणामा जाता है ॥ ३७ ॥

द्रव्यका रक्षण—

### गुणपर्ययवद्वयम् ॥ ३८ ॥\*

अर्थ—निम्न गुण और पर्याय पाइ जाय उस द्रव्य कहत है ।

गुण—द्रव्यकी जनक पर्याय पल्लव रहन पर भी जा द्रव्यमे कभी पृथक् न हो । निम्नस्त द्रव्यक साथ रह उसे गुण कहत है । जैसे जीरक नान आदि पुट्टलक रूप रमादि ।

पर्याय—क्रममहाशाली बन्तुकी रिगपताको पर्याय कहत है । जैसे चीरकी नर नागकादि ॥ ३८ ॥

काठ भी द्रव्य है—

### कालश्च ॥ ३९ ॥

अर्थ—काल भी द्रव्य है, क्योंकि यन् भी उत्पन्न व्यय ध्राय तथा गुण पर्यायस सहित है ।

नोट—यन् काल द्रव्य रत्नोकी रागिकी तरह एक दूसरसे पृथक् रहते हुए लोहाकाशक ममस्त प्रदशा पर स्थित है । यह एक-प्रणी और अमृतिक है ॥ ३९ ॥

\* यन् द्रव्यका रक्षण पुराणम भिन्न नहीं है । निम्न गद भद है अथ भद नहीं । क्योंकि पर्यायस उत्पन्न और रचरा तथा गुणस ध्रीय अथकी प्रतीति होजाता है ।

१ 'च' का अन्वय 'द्रव्याणि' होने साथ है ।

कालद्रव्यकी विशेषता—

**सांज्ञतममय ॥ ४० ॥**

अर्थ—एक काल द्रव्य अनन्त समयमाना है। क्यपि वर्तमान-काल एकममय मात्र ही है तथापि भूत भविष्यत्की अपेक्षा अनन्त समयमाना है।

ममय—कालद्रव्यक समस्त छोटे बिसको समय कहते हैं। मन्दगतिम चलनेवाला पुट्टल परमाणु आकाशक एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर चितन कालम पहुँचना है तबना काल एक समय है। इन समयक समूह ही आसुरि घटा आदि व्यवहारकाल होता है। व्यवहारकाल निश्चय कालद्रव्यकी पयाय है।

निश्चयकालद्रव्य—लोकालोक प्रत्येक प्रदेशपर स्त्रोकी साक्षिकी तरह जा स्थित है उसे निश्चय कालद्रव्य कहते हैं। वर्तना उमका कार्य है ॥ ४० ॥

गुणका लक्षण—

**द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा ॥ ४१ ॥**

अर्थ—जो द्रव्यक आश्रय हों और स्वयं दूसरे गुणोंसे रहित हों वे गुण कहलाते हैं, जस-नीचर नान आदि। ये जीव द्रव्यक आश्रय रहते हैं तथा उनमें कोई दूसरे गुण नहीं रहता ॥ ४१ ॥

पयायका लक्षण—

**तद्भाव परिणामः ॥ ४२ ॥**

अर्थ—नीचादि द्रव्य जिन रूप हैं उनक उमीरूप रहनेको परिणाम या पयाय कहते हैं। जैसे जीवकी नर नारकादि पयाय ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमदुमास्वामिविरचित माक्षगान्ध पञ्चमोऽध्यायः

## प्रश्नावली ।

- ( १ ) अस्त्रिकाय किसे कहते हैं व कितने हैं ?
  - ( २ ) जीव अस्थायी-प्रदशी होनेपर भी अन्य शरीरम किस प्रकार रहता है ?
  - ( ३ ) कालद्रव्य क्या उपकार है ?
  - ( ४ ) अलोकाकाश आकाशमें कालद्रव्य किना उत्पाद आदि कि न तरह होत है ?
  - ( ५ ) पुद्गल द्रव्य कितने प्रदश हैं ?
  - ( ६ ) 'अर्पितानर्पितसिद्धे ' इम सूत्रका क्या आशय है ?
  - ( ७ ) 'नघन्य गुण' शब्दका क्या अर्थ है ?
  - ( ८ ) घन्ध किन किनका होता है ?
  - ( ९ ) यदि धम द्रव्य न मानकर उसका कार्य आकाश द्रव्यसे लिया जाय तो क्या हानि होगी ?
  - ( १० ) काल द्रव्य अजीव क्या है ?
-

**षष्ठ अध्याय ।****आस्रवतत्त्वका वर्णन ।**

यागके भेद ३ स्वरूप—

**कायवाङ्मन. कर्मयोग. ॥ १ ॥**

अर्थ—काय वचन और मनकी क्रियाको योग कहते हैं । (यात् काय वचन और मनः द्वारा आत्माक प्रदेशोंम जो परिष्पन्द हलन चरन) होता है उसे योग कहत हैं । योगक तीन भेद हैं— मनोयोग, २ वचनयोग और ३ काययोग ।

मनोयोग—मनक निमित्तमे आत्माक प्रदेशोंम जो हलन चलन जाता है उस मनोयोग कहते हैं ।

वचनयोग—वचनक निमित्तस आत्माक प्रदेशोंमें जो हलन लन होता है उसे वचनयोग कहत हैं ।

काययोग—कायक निमित्तस आत्माक प्रदेशोंमें जो हलन लन होता है उसे काययोग कहते हैं ।

इन तीनों योगोंकी उत्पत्तिम वीर्यान्तगय कर्मका क्षयोपशम गण है ॥ १ ॥

आस्रवका स्वरूप—

**म आस्रवः ॥ २ ॥**

अर्थ—वह तीन प्रकारका योग ही आस्रव है । निम प्रकार एक भीतर पानी आनेमें क्षिरे कारण होती है उसी प्रकार आत्मामें र्मे आनेमें योग है । कर्मोंक आगेके द्वारको आस्रव कहते हैं ।

नोट— यद्यपि योग आत्मरक्त होनेमें कारण है तथापि सूत्रं कारणम कार्याका उपकार कर उस आत्मरूप कइ दिया है। जेमे-प्राणोंकी स्थितिमें कारण होनेमें अन् हीनो प्राण कह दत है ॥ २ ॥

यागके निमित्तम आत्मरूपमें भेद—

**शुभ. पुण्यस्याशुभ पापस्य ॥ ३ ॥**

अर्थ—शुभ याग पुण्यकर्मक आत्मरूप और अशुभ योग पाप-कर्मक आत्मरूप कारण है।

शुभ योग—शुभ परिणामोंस रचे हुए यागको शुभ योग कहत है। जैसे—अरहन्तकी भक्ति करना, नीचाकी रक्षा करना आदि।

अशुभ याग—अशुभ परिणामोंस रचे हुए योगको अशुभ योग कहत है—जस जीवोंकी हिंसा करना, झूठ मोला आदि।

पुण्य—जो आत्माको पवित्र कर उस पुण्य कहते हैं।

पाप—जो आत्माको अरु कार्योमें बचाव-दूर कर उसे पाप कहत है ॥ ३ ॥

स्वामीयः अपेक्षा आत्मरूपके भेद—

**मरुपायाकपाययो. माम्परायिकेर्यापथयो ॥४॥**

अर्थ—बह योग कपाय सहित जीवोंके साम्पगधिक आत्मरूप और कपाय रति जीवोंके इर्यापथ आत्मरूपका कारण है।

कपाय—जो आत्माको कपे अथत् चारों गतियोंमें भटका कर दुःख ठव उस कपाय कहत है। जैसे—क्रोध, मान, माया, लभ।

साम्परायिक आत्मरूप—जिस आत्मरूपका मन्तर ही प्रयोजन है उस साम्पगधिक आत्मरूप कहत है।

इयापथ—स्थिति और अनुभाग रहित कर्मों आम्बरों  
इयापथ आम्बर कृत है ।

नोट—इयापथ आम्बर ११ पैर १४ के गुणस्थान तकक  
जीकोंक होना है और उमर पटल गुणस्थानोंम साम्प्रदायिक आम्बर  
होता है ॥ ४ ॥

साम्प्रदायिक आम्बरके भेद—

इन्द्रियरूपायात्रतक्रिया पञ्चतु.पञ्चपञ्चविंशति-  
नर्या पूर्वस्य भेदा. ॥ ५ ॥

अर्थ—स्पर्श आदि पाच इन्द्रिया, बोधादि चार कषाय,  
हिंसादि पाच अन्न ओर सम्यग् च आदि पचीस क्रियाए, २५ तरह  
साम्प्रदायिक आम्बरके ३० भेद हैं अथत् इन सब ३० भेदोंके द्वारा  
साम्प्रदायिक कर्मका जाम्बर होता है ।

पचीस क्रियाए—

( १ ) सम्यक्-रमो वजानगली क्रियाको मन्वस्त्र क्रिया  
कहते हैं जेम देवपूजन आदि ।

( २ ) दिव्यात्मका बद्धानगली क्रियाको मिथ्यात्त्र क्रिया  
कहते हैं जेम कुटेर पूजन आदि ।

( ३ ) ग्रीगदिस गमनागमन रूप प्रवृत्ति करना सो प्रयोग  
क्रिया है ।

( ४ ) सयमीका असयमर स भुम्ब होना सो समादान क्रिया है ।

( ५ ) गमनके लिये जो क्रिया होनी है उमे  
कहते हैं ।



( ६ ) प्राणोंके पशम जा क्रिया हो वह प्रादोषिकी क्रिया है

( ७ ) दुष्टत्वपूर्वक उचन करना सा कायिकी क्रिया है ।

( ८ ) क्रिमाक उपकरण, तन्व्याय आन्त्रिका ग्रहण करना सं  
अधिसरण क्रिया है ।

( ९ ) जासोंको दुःख उपजत करनेवाली क्रियाको पागिताविक्र  
क्रिया कहते हैं ।

( १० ) आयु इन्द्रिय आन्त्रि प्राणोंका वियोग करना सं  
प्राणातिपाति क्रिया है ।

( ११ ) गगनक वगोभूत हास्य भास्य रूप दर्शना सो दर्श  
क्रिया है ।

( १२ ) गगन वगोभूत हास्य वस्तुका स्पर्श करना स्पर्श  
क्रिया है ।

( १३ ) विषयोंक नय नय कारण मिलाना प्रात्ययिकी  
क्रिया है ।

( १४ ) सो दुःख अथवा पशुभोज्य केन तथा सात आदिक  
स्थानों मन्त्र मन्त्रदि भाग्य करना समन्तानुपात क्रिया है ।

( १५ ) विना स्त्री विना ज्योषी हृद गुणिक उज्ज्वल बेटना  
अनाभाग क्रिया है ।

( १६ ) दुःख दूरन करने वा १ क्रियाको स्वयं करना स्वहस्त  
क्रिया है ।

( १७ ) दानोंके उपजत अर्थकी प्रवृत्तिको मन्त्र समझना  
निर्गम क्रिया है ।

( १८ ) फल किये हुए पापोंको प्रकाशित करना विदागण क्रिया है ।

( १९ ) चाग्निमोहनीय कर्मरु उदयसे शास्त्रोक्त आवश्यकतादि क्रियाओंक कर्त्तव्य अममर्थ होकर अन्यथा निरूपण करना सो आज्ञा-व्यापादिकी क्रिया है ।

( २० ) प्रनाद अथवा अनानक वगीभूत होकर आगमोक्त क्रियाओंमें अनान्य करना अनाकाशा क्रिया है ।

( २१ ) छन्न भेदन आदि क्रियाओंमें स्वयं प्रवृत्त होना तथा अन्यको प्रवृत्त करके हर्षित होना प्रारम्भ क्रिया है ।

( २२ ) पवित्रकी स्थान प्रवृत्त होना पावित्र्यहिकी क्रिया है ।

( २३ ) ज्ञान स्मृति आन्त्रिय कष्टरूप प्रवृत्ति करना माया क्रिया है ।

( २४ ) प्रशमा आन्त्रिय किमीका मिथ्यात्व रूप परिणतिम ह्म करना मिथ्यादगेन क्रिया है ।

( २५ ) चास्त्रि मोहनीयक उदयम त्यागरूप प्रवृत्ति नहीं होना अप्रत्याग्यान क्रिया है ।

आत्मप्रका विशेषतामें कारण—

तीव्रमदज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेष-  
स्नद्विजेषः ॥ ६ ॥

अर्थ—तीव्रभाव मन्दभाव ज्ञातभाव, अज्ञातभाव अधिकरण विशेष और वीर्यविशेषम आत्मरूप प्रकृति—हीनाधिकता होती है ।

तीव्रभाव—अज्ञान वशे हुए बोधादिक द्वारा ज्ञान तीव्ररूप भाव होत है उनको तीव्रभाव कहत है ।

मन्दभास—कषायानी मन्दतासे जो भाव होत है उहें मन्द भाव कहत है ।

शातभास—यत् प्राणी गानक योग्य है उम कह जानक प्रसक्त हानकी शातभास कहत है ।

अनातभास—प्रमाद अथवा अज्ञानम प्रवृत्ति कउनकी अज्ञात भास कहत है ।

अधिसृग्ण—निम्न आश्रय अर्ध रह उम अधिसृग्ण कहने है ।

अधिसृग्णते भेद—

अधिकरण जीवाऽजीवाः ॥ ७ ॥

अर्थ—अधिसृग्णके दो भेद हैं—१ जीव और २ अजीव ।  
जथात् आम्ब, नीर आर अजीव दोनोंके आश्रय है ॥ ७ ॥

जायाधिसृग्णके भेद—

आद्य सरभममारभारभयोगकृतकारितानुमत-

कषायविशेषैस्त्रिभिस्त्रिशतुश्रैकश ॥८॥

अर्थ—आदिका जीवाधिकरण जानकर—सम्भ ममारम्भ, जारम्भ, मन रचन कायकूप नीन योग, कृत कारित अनुमोत्ना, तथा क्रोधादि चार कषायोंकी विशेषतास १०८ भेदरूप है ।

भासार्थ—सरम्भादि तीनोंम तीन योगोंका गुणा करनसे ० भेद हुए । इन ० भेदोंम कृत आदि तीनको गुणा करन पर २७ भेद हुए और इन २७ भेदोंम ४ कषायकष गुणा करनस कुल १०८ भेद हुए ।

सरम्भ—हिंसादि पापोंक कर्मका मनमें प्रिचार करना सरम्भ है।

ममारम्भ—हिंसादि पापोंके कारणोंका अभ्यासरम्भना ममारम्भ है।

आरम्भ—हिंसादि पापोंक करनेका प्रारम्भ करदेना आरम्भ है।

कृत—स्वयं करना कृत है।

कारित—दृमस्स कराना कारित है।

अनुमत—द्रमरक द्वारा कियहुए कार्यको भग्न मन्मथना ॥८॥

अनीयाधिकरणके भेद—

## निर्वर्तनानिक्षेपसयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदा. परम् ॥ ९ ॥

अर्थ—पर अथत् अनीयाधिकरण आश्रव—दा प्रकारको निर्वर्तना, चार प्रकारका निक्षेप, दो प्रकारका सयोग और तीन प्रकार निर्मा, इसतह ११ भेदवाला है।

निर्वर्तना—रचना करनेको निर्वर्तना कहते हैं। इसक ० भेद हैं—१ मूलगुण निर्वर्तना और २ उत्तरगुण निर्वर्तना। शरीर मन तथा आसोच्छ्वासकी रचना करना मूलगुण निर्वर्तना है। ओं काष्ठ, मिट्टी आदिसे चित्र वागदकी रचना करना उत्तरगुणनिर्वर्तना है।

निक्षेप—वस्तुको रखनेको निक्षेप कहते हैं—इसक चार भेद हैं—१ अप्रत्यक्षित निक्षेपाधिकरण, २—दु-प्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण, ३—समानिक्षेपाधिकरण और ४—अनाभोग निक्षेपाधिकरण है। विना देखे किसी वस्तुको रखना अप्रत्यक्षित निक्षेपाधिकरण है। यत्नाचार रहित होकर रखनेको दु प्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण कहने हैं। शीघ्रतासे रखना सदृश निक्षेपाधिकरण है। और किसी

योम्य स्थानम न स्वकत्र विना तमे ही यदा वग रम्ब देना अनाभोग  
निश्चेषाधिरुण ह ।

सयोग— पिना दनरा नाम सयोग है । इसमें दो भेद है—  
१—भक्तपान सयोग २—उपकरण सयोग । आहार पानीका दूध  
अहार पानीम मिलाना भक्तपान सयोग है । और कमण्डलु आदि  
उपकरणाको दूधकी पीठी आदिमि पोंटना उपकरण सयोग है ।

निमग—प्रपत्ताको निमग कर्तन है । इसमें ३ भेद है—  
१—कायनिमग अथात् कायको प्रपत्ताना, २—वाङ्निमग अथात्  
वचनोंका प्रपत्ताना ओर मनानिमग अथात् मनको प्रपत्ताना ॥ ० ॥

ज्ञानाकरण आर दानाकरणक आम्बर—

तत्प्रदोपनिह्वमात्मर्यान्तरायामादनोपघाता  
ज्ञानदर्शनावरणयो ॥ १० ॥

अर्थ—ज्ञान ओर दर्शनक विषयम किये गये प्रदोप, निह्वर,  
मात्सर्य, अन्तराय, आमादन और उपघात य ज्ञानाकरण तथा दर्शना-  
वरण कर्मक आम्बर है ।

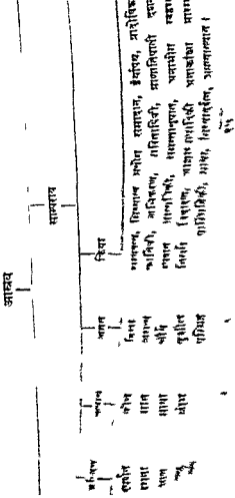
प्रदोप—किमी घमात्माक द्वारा को गइ तत्त्वज्ञानकी प्रशमाका  
नहीं सुगना प्रदोप है ।

निह्वर—किमी कारणस अपन ज्ञानको छुपाना निह्वर है ।

मात्सर्य—वस्तु स्वरूपको जानकर यत् भी पण्डित हो जावगा  
ऐसा विचार कर किमीको नहीं पत्ताना मात्सर्य है ।

अन्तराय—किसीक ज्ञानाभ्यासम विघ्न टालना अन्तराय है ।

# साम्प्रदायिक आश्रमके ३९ भेद ।





आमादन—दूसरेक द्वारा प्रकाशित होना योग्य ज्ञानको रोक  
दना आमादन है ।

उपघात—सच्चे ज्ञानमें दोष रहाना उपघात है ।\* ॥१०॥

अमाताविदनीयके आश्रय—

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभय-  
स्यान्यमद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—(आत्मपरोभयस्थानि) निज पर तथा दोनोंक विषयमें  
स्थित ( दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनानि ) दुःख शोक ताप  
आक्रन्दन वध और परिदेवन य ( अन्यमद्वेद्यस्य ) अमाताविदनीयके  
आश्रय है ।

दुःख—पीडाका परिणाम विषयको दुःख करने है ।

शोक—अपना उपकार करनेवाले पदार्थका वियोग होना पर  
विकल्पना होना शोक है ।

ताप—ममारम अपनी निन्दा आदिक हो जानसे पश्चात्ताप  
करना ताप है ।

आक्रन्दन—पश्चात्तापसे अश्रुपात करते हुए गना आक्रन्दन है ।

वध—आयु आग्नि प्राणोंका वियोग करना वध है ।

\* यद्यपि प्रति समय आयु-कर्मको छांटकर सब सात कर्मोंका वध  
हुआ करता है तथापि प्रदोषादि भावाक द्वारा या श्वावल्गादि विग्रह  
कर्मोंका वध होता जाता है इ म् स्थिति वध और अनुभाग वधको  
अपेक्षा समझना चाहिये । अर्थात् उस समय प्रकृति और प्रदोष वध ता  
सब कर्मोंका हुआ करता है किन्तु स्थिति और अनुभाग वध श्वावल्गादि  
विग्रह २ कर्मोंका अधिक होगा ।



परिदेवन—सक्रेण परिणामिका अवलम्बन कर हम तरह रोना कि मुनेग्रान्ने दृश्यम दया उत्पन्न हो जाव सो परिदेवन है ।

नोट—यद्यपि शोक आत्ति दुःखरु ही भेद हैं तथापि दुःखकी जातिव्या पतनमक लिये सनका ग्रण किया है ॥ ११ ॥

माना घेन्नोयका अक्षर—

**भूतव्रत्यनुकपादानमरागमयमादियोगः क्षान्तिः  
शौचमिति मद्देवस्य ॥ १२ ॥**

अर्थ—भूतव्रत्यनुकम्पा, तन, मगगनयमादि योग, क्षान्ति, और शौच तथा अर्हद्भक्ति आदि म सातापेदनीयक आसन हैं ॥

भूतव्रत्यनुकम्पा— भूत=समारक समस्त प्राणी और व्रती=अणु व्रत या महान्नधारी जीवोंपर दया करना सो भूतव्रत्यनुकम्पा है ।

दान—निज और परक उपकारस योग्य वस्तुके देनेको दान कहते हैं ।

मरागमगमादि—पाच इन्द्रिय और मनके विषयोंसे विरक्त होन तथा छद् कायक जीवोंकी हिंसा न करनको समय कहते हैं और राग सहित समयको सगसयम कटन हैं ।

नोट—यत् आदि शब्दस समयमयम—( श्रावकक व्रत ) अकाम निर्जरा— वन्दीखान आत्ति सक्रेणतारहित भोगोपभोगका त्याग करना ) । और बालतप—( मिथ्या दर्शनसहित तपस्या करना ) का भी ग्रहण होता है ।

योग—इन सबको अच्छी तरह धारण करना योग कहलाता है ।

क्षान्ति—श्रीधादि कषायक अभावकी क्षान्ति कहते हैं ।

१ शोच—लोमका त्याग करना शौच है ।

नोट—इति शब्दस अर्द्धभक्ति, मुनियोंकी वैयावृत्ति आदिका प्रण करना चाहिये ॥ १२ ॥

दर्शनमानायका आश्रव—

केवलिश्रुतमघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य । १३ ।

अर्थ—कवली, श्रुत—( शास्त्र ), मघ ( मुनि आर्थिका श्रावक श्राविका ) धर्म और देव इनका अवर्णवाद करना दर्शनमोहनीय कर्मका आश्रव है ।

अवर्णवाद—गुणगणोंको झूठ दोष लगाना मो अवर्णवाद है ।

कवलीका अवर्णवाद—कवली ग्रामाहार कर्के जीवित रहते है, इत्यादि कहना मो कवलीका अवर्णवाद है ।

श्रुतका अवर्णवाद—शास्त्रमें मास भक्षण करना आदि लिखा है एमा कहना मो श्रुतका अवर्णवाद है ।

सद्धका अवर्णवाद—ये शब्द है, मलिन है, नम्र है इत्यादि कहना सो संधका अवर्णवाद है ।

धर्मका अवर्णवाद—जिनेन्द्र मगवानरु द्वारा कह हुण धर्ममें कुछ भी गुण नहीं है—उमके सबन करनेगाले असुर होवगे, इत्यादि कहना धर्मका अवर्णवाद है ।

देवका अवर्णवाद—देव मदिग पीते हैं, माम स्वात है, जीयोंकी बलिसे प्रसन्न होत है, आदि कहना देवका अवर्णवाद है " " " "

चारित्र्य माहनायका आश्रव—

चरित्रमोहस्य ।

अर्थ—कषायक उदयसे होनेवाले तीव्र परिणाम चारित्रमोह  
नीयक आसत्र है ॥ १४ ॥

नरक आयुका आसत्र—

**वहारभपरिग्रहत्व नारकस्यायुपः ॥ १५ ॥**

अर्थ—बहुत आरम्भ और परिग्रहना होना नरक आयुका  
आसत्र है ॥ १५ ॥

तियञ्च आयुका आसत्र—

**माया तयग्योनस्य ॥ १६ ॥**

अर्थ—माया (छल्कण्ट) निर्देश आयुका आसत्र है ॥१६॥

मनुष्य आयुका आसत्र—

**अलपारभपरिग्रहत्व मानुपस्य ॥ १७ ॥**

अर्थ—थाड़ा आरम्भ और थोरा परिग्रहका होना मनुष्य  
आयुका आसत्र है ।

**स्वभात्रमादेव च ॥ १८ ॥**

अर्थ स्वभात्रसे ही सरल परिणामी होना भी मनुष्य आयुका  
आसत्र है ।

नोट—इस सूत्रको पृथक् लिखनका आशय यह है कि इस  
सूत्रम वताइ हुई बातें दवायुके आसत्रमें भी कारण है ॥ १८ ॥

सप्त आयुर्जाका आसत्र—

**नि.शीलव्रतत्व च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥**

अर्थ—दिग्घनादि ७ शील और अर्द्धिस्तादि पांच व्रतों  
अभाव भी समस्त आयुर्जाका आसत्र है ।

नोट—शील और मनका अभाव रहते हुए जब कपार्योमें अत्यन्त तीव्रता, तीव्रता, मन्दता और अत्यन्त मन्दता होती है तभी वे क्रमसे चारों आयुओंके आस्रका कारण होते हैं ॥ १० ॥

देव आयुका आस्र—

सरागमयममयमासयमाकामनिर्जरावालतपांसि  
दैवस्य ॥ २० ॥

अर्थ—सरागमयम, मयमासयम अकाम निर्जरा और बाल तप ये देव आयुके आस्र हैं ।\* ॥ २० ॥

सम्यक्त्व च ॥ २१ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन भी देव आयु कर्मका आस्र है ।

नोट १—इस सूत्रको पृथक् लिखनेका प्रयोजन यह है कि सम्यक्त्व अप्रस्थामें वैमानिक त्रैवीकी ही आयुका आस्र होता है ।

नोट २—यद्यपि सम्यग्दर्शन किसी भी कर्मके बन्धमे कारण नहीं है तथापि सम्यग्दर्शनकी अप्रस्थामें जो रागादि पाया जाता है उसीसे बन्ध होता है । वही तरह सराग मयम—मयमासयमआदिके विषयमें भी जानना चाहिये ॥ × ॥ २१ ॥ \*

अनुभूत काम कर्मका आस्र—

योगवक्रता त्रिमवादन चाशुभस्य नाम्नः ॥ २२ ॥

\* इन सूत्रका शब्दाथ पीछे १२ वें सूत्रके आस्र लिखा जायुका है ।

× यनाशा मुहुरि स्मेनाशेनास्य रथा गति ।

याशा तु रागस्तेनाशनास्य रथा भवति ॥

सामायकूपसे जीवनके त्रिमाम

अर्थ—योगोंकी कुटिलता और विमर्शान्न-अन्यथा प्रवृत्ति करना अशुभ नाम कर्मका आश्रय है ॥ २२ ॥

शुभ नामकर्मका आश्रय—

**तद्विपरीत शुभस्य ॥ २३ ॥**

अर्थ—योग वक्रता ओर विमर्शान्नस विपरीत अर्थात् योगोंकी सरलता ओर अन्यथा प्रवृत्ति का अभाव ये शुभ नामकर्मक आश्रय है ॥ २३ ॥

तावत्तर नामधमक आश्रय—

**दर्शनविशुद्धिर्विनयमपन्नता शीलव्रतेष्वनती-  
चारोऽभीक्षणज्ञानोपयोगमयोगो शक्तितस्त्यागतपमी  
साधुममाधिर्वैयाघृत्यकरणमर्हेदाचार्यवहुश्रुतप्रवच-  
नभक्तिराशयकापरिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचनव-  
त्मलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ २४ ॥**

अर्थ—१ दर्शनविशुद्धि—पक्षीम दोषरहित निर्मल सम्यग्दर्शन,  
२ विनयमपन्नता—रत्नत्रय तथा उनक धारकोंकी विनय करना,  
३ शीलव्रतपन्नतीचार—अहिंसादि व्रत ओर उनक रक्षक क्रोध  
त्याग आदि शीर्षेण विना प्रवृत्ति, ४-५ अभीक्षणज्ञानोपयोग-  
मयोग—निरन्तर नानुमय उपयोग रचना और सत्कारस भयभीत होना  
६-७ शक्तितस्त्याग तपमी—यथाशक्ति दान देना और उन्वा-  
सादि तप करना, ८ साधुममाधि—साधुओंक विना आदिको दूर  
करना, ९ वैयाघृत्यकरणम्—रोगी तथा बाल वृद्ध मुनियोंकी सेवा

करना १०-११-१२-१३ अर्हदाचार्यमदुश्रुतप्रवचनभक्ति-  
 अग्रन्त भगवान्की भक्ति करना-दीशा देनाले आचार्योंकी भक्ति  
 करना, उपाध्यायोंकी भक्ति करना, शास्त्रकी भक्ति करना, १४  
 आरक्ष्यरूपग्रहाणि -सांभारिक आदि छह आवश्यक क्रियाओंमें  
 हानि नहीं करना, १५ मार्गप्रभा वना-जन धर्मकी प्रभावना करना  
 और १६ प्रषधनसलत्वम्-गोवत्सकी तरह धर्मात्मा जीवोंस म्नह  
 स्वना। ये सोलह भावनायें तीर्थंकर प्रकृति नामक नामकर्मक आम्न्य हैं।

नोट—इन भावनाओंमें दर्शनविशुद्धि मुख्य भावना है।  
 उसके अभावमें सप्तक अथवा यथाम्भय हीनाधिक होन पर भी तीर्थ  
 कर प्रकृतिका आम्न्य नहीं होना और उमक रहने हुए अथ भावना-  
 ओक अभावमें भी तीर्थंकर प्रकृतिका आम्न्य होता है\* ॥ २४ ॥

नीचगाधर्मका आम्न्य—

परात्मनिदाप्रशमे मदमद्गुणोच्छादनोद्भावने  
 च नीचैर्गोत्रिभ्य ॥ २५ ॥

अर्थ—(परात्मनिन्दाप्रशमे) दूसरेकी निन्दा और अपनी  
 प्रशंसा करना, (च) तथा (मदमद्गुणोच्छादनोद्भावने) दूसरेक  
 मौनूद गुणोंको ढाकना और अपन क्षुब्ध गुणोंका प्रकट करना, ये  
 नीच कर्मगोत्रक आम्न्य हैं ॥ २५ ॥

उच्चगोत्रकर्मका आम्न्य—

तद्विषययो नीचवृत्त्यनुत्सेको चोत्तरस्यु ॥ २६ ॥

अथै— ( तद्विपर्यय ) नीच गात्रक आत्मगोमे विपरीत अर्थत्  
परप्रणमा तथा आत्मनिन्ता (च) जोग (नीचैर्धृत्वनुसेका) नम्र वृत्ति  
तथा मद्रा अभाव य (उत्तम्य) च मोत्रकर्मक आत्मन है ॥२६॥

अन्तरायनस्यैवा आत्मन—

## विघ्नकरणमतगायस्य ॥ २७ ॥

अर्थ एक तान लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्यम विघ्न  
करना, अन्तर्गायकभेदा आत्मन है ॥ २७ ॥

इति श्रीमद्भुआस्वामि विरचित माहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥

## प्रश्नावली ।

- ( १ ) योग किम कहत है ? और उसय कितन भद है ?
- ( २ ) अजीवात्रिकरण आत्मनय भद बनाओ ।
- ( ३ ) तत्र कि आयुको एगइकर शय मात कर्माका बन्ध प्रति  
समय जाना रहना है तत्र प्रदावादि त्रिगय २ कर्मोंक आत्मन  
किस प्रकार हो सकेग ?
- ( ४ ) आत्मरायिक और इयापथ आत्मनय उदाहरण दकर  
भद समझाओ ।
- ( ५ ) जत्र कि सम्यग्दर्शन मोक्षका माग है तत्र उम दव आयुका  
कारण क्यों छिया ?
- ( ६ ) एक मिथ्याचष्टि नीच विनयसम्पन्नता आदि पण्डित भाव  
नार्थाका पालनकर तीर्थकर प्रकृतिका आत्मन कर सकता  
है या नहीं ? यदि नहीं तो क्यों ?

- (७) इस सप्तारमें क्या कोड उसे भी जीव हैं निषिद्ध किमी भी कर्मका आश्रय नहीं होता तो ?
- (८) नीचे लिखे हुए शब्दोंके लक्षण बताओ—  
निह्वय, सरागमयम, धालनप, योगप्रकृता, अनुत्सक, माधु  
समाधि, अवर्णवाद समारम्भ और ईयापय आश्रय ॥

## सप्तम अध्याय ।

शुभाश्रयका वर्णन ।

व्रतका लक्षण—

हिंसाऽनृतस्तेयाव्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥ १ ॥

अर्थ— हिंसा, शठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाच पापोंमें भावपूर्वक विरक्त होना व्रत कहलाता है ॥ १ ॥

व्रतक भेद—

देशमर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥

अर्थ— व्रतक दो भेद हैं— १ अणुव्रत और २ महाव्रत ।  
हिंसादि पापोंका एकदम त्याग कर्मस अणुव्रत और सर्वव्रत त्याग  
कर्मसे महाव्रत होते हैं ॥ २ ॥

व्रतोंकी स्थिरताके कारण—

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥ ३ ॥

अर्थ— उन व्रतोंकी स्थिरताके लिये प्रत्येक व्रतका पाच पाच  
भावनाएँ हैं ।

भावना— किसी वस्तुका बार बार चिन्तन करना



अहिंसा व्रतकी पाच भावनाए—

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणममित्यालोक्तिपान-  
भोजनानि पञ्च ॥ ४ ॥

अर्थ—वाङ्गुप्ति—वचनको रोकना, मनोगुप्ति—मनकी प्रवृत्तिको रोकना, ईर्याममिति—चार हाथ जमीन देखकर चरना, आदान-निक्षेपण ममिति—भूमिको जीरगहित देखकर सामधानीसे किसी वस्तुको उठाना, रखना और आलोक्तिपान भोजन—देस शोधकर भोजनपान ग्रहण करना ये पाच अहिंसा व्रतकी भावनाए है ॥ ४ ॥

सत्यव्रतकी भावनाए—

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्य-  
नुवीचिभाषण च पच ॥ ५ ॥

अर्थ—क्रोधप्रत्याख्यान—क्रोधका त्याग करना, लोभप्रत्याख्यान—लोभका त्याग करना, भीरुत्व प्रत्याख्यान—भयका त्याग करना, हास्य प्रत्याख्यान—शाम्यका त्याग करना और अनुवीचि भाषण—शास्त्रकी आनानुसार निर्दोष वचन बोलना, य पाच सत्य व्रतकी भावनाए है ॥ ५ ॥

अचौथ व्रतकी भावनाए—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्य-  
शुद्धिसधर्माऽविमवादा पच ॥ ६ ॥

अर्थ—शून्यागार वाम-पर्वतोंकी गुफा, वृक्षकी कोटर आदि निर्जन स्थानोंमें रहना, विमोचिता वास—दूसरेके द्वारा छोडे हुए

स्थानम निवास करना, परोपरोधाकरण—अपन स्थानपर छर हुण  
दूमेरेको नहीं रोकना, भेक्ष्यशुद्धि—चरणानुयोग शास्त्रके अनुमार  
भिक्षाकी शुद्धि रम्बना, और मधर्माभिप्राय—महधर्मी भाइयोंसे यह  
हमारा हे यह आपका है इत्यादि कहह नहीं करना, ये पाच अचौर्य  
व्रतकी भावनाए ह ॥ ६ ॥

ब्रह्मचर्य व्रतकी पाच भावनाए—

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरागनिरीक्षणपूर्वरतानु-  
स्मरणवृष्येष्टरमस्वशरीरमस्कारत्यागा. पच ॥७॥

अर्थ—स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग—स्त्रियोंम राग बढानवाली  
कथाओंक सुनना त्याग करना, तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण त्याग—  
स्त्रियोंक मनोहर अङ्गोंक दग्धनका त्याग करना, पूर्वरतानुस्मरण त्याग—  
अपन अवस्थाम भागे हुण विषयोंक स्मरणका त्याग करना, वृष्येष्टरस  
त्याग—कामवर्धक गरिष्ठ रसाका त्याग करना और स्वशरीरमस्कार  
त्याग—अपन शरीरके सम्कारोंका त्याग करना, ये पाच ब्रह्मचर्य व्रतकी  
भावनाए है ॥ ७ ॥

परिम्रहत्याग व्रतकी भावनाए—

मनोज्ञामनाज्ञन्दि विषयरागद्वेषवर्जनानि पच ॥८॥

अर्थ—मर्षा आदि पाचों इन्द्रियोंक इष्ट अनिष्ट आदि  
विषयोंम व्रमसे रागद्वेषका त्याग करना, ये पाच परिम्र त्याग व्रतकी  
भावनाए है ॥ ८ ॥

हिंसादि पाच पापाके विषयमें करनेयोग्य विचार—

हामुत्रापय. र्शनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—( हिंसादिषु ) हिंसादि पाच पापोंक होणेपर ( इह ) इस लोकम तथा ( अमुत्र ) परलोकम ( अपाणवप्रदर्शनम् ) मासारिक ओर पारमार्थिक प्रयोजनोंका नाश तथा निन्द्याको देखना पढता हे पेमा विचार कर ।

भावार्थ—हिंसादि पाप करनस इमलोक तथा परलोकम अनेक आपत्तिया प्राप्त हानी हे ओर निन्दा भी होती हे, इसलिये इनको छोडना ही अच्छा ह ॥ ९ ॥

**दुःखमेव वा ॥ १० ॥**

अर्थ—अथवा हिंसादि पाच पाप दुःखरूप ही हैं एसा विचार करे ।

नोट—यदा कार्यमें कारणका उपचार मनज्ञाना चाहिये, क्यों कि हिंसादि दुःखक कारण हैं पर यदा उन्हें कार्य अथवा दुःखरूप वर्णन किया है ॥ १० ॥

निरंतर चिन्तन करने योग्य चार भावनाएँ—

**मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिक-  
क्लिश्यमानाऽग्निनेषु ॥ ११ ॥**

अर्थ—( च ) और ( सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाग्निनेषु ) सत्त्व, गुणाधिक, क्लिश्यमान और अग्निनेय जीवोंमें क्रमसे ( मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि ) मैत्री प्रमोद कारुण्य और माध्यम्य भावना भाव ।

१-प्राणीमात्र २-जा गुणोंस अधिक हो, ३ दुःखी-गमी वर्गमें,  
४-मिथ्यादृष्टि-अदृष्टप्रकृतिके धारक ।

मैत्री—दूसरोंको दुख न हो एस अभिप्रायको मैत्री भावना कहत है ।

प्रमोद—अधिक गुणोंक धारी जीवोंको देखकर मुग्धप्रमत्ता आत्सि प्रकट होनवाली अन्तरङ्गकी भक्तिको प्रमोद कहत है ।

कारुण्य—दुखी जीवोंको देख कर उनक उपकार करनक भावोंको कारुण्यभाव कहते हैं ।

माध्यस्थ्य—जो जीव तत्त्वार्थश्रद्धानम रहित है तथा हितका उपदेश दनसे उलट चिड़न है उनम राग द्वेषका अभाव होना सो माध्यस्थ्य भावना है\* ॥ ११ ॥

भस्मार और शरीरके स्वभावका विचार—

जगत्कान्यस्वभावौ वा भवेगौराग्यार्थम् ॥ १२ ॥

अर्थ—सवग (समारभ भय) और वेगम्य (रागद्वेषक अभाव)क लिये क्रमसे समार और शरीरक स्वभावका चिंतवन कर ॥ १२ ॥

हिंसा पापका लक्षण —

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपण हिंसा ॥ १३ ॥

\* मैत्राभाय जगतमें मेरा सब जायामे नित्य रह ।  
 दीन दुखी जीवा पर मरे उरम कफणा स्नान बह ॥  
 दुर्जन कर कुमार्गरतां पर क्षोभ नहीं मुझका आय ।  
 साम्यभाव रखवु मैं उनपर ऐसा परिणति हाजाये ॥  
 गुणीननांका देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड आय ।

—शुगलकिशोर 'मुल्ल्यार'

अर्थ—प्रैमादक योगस यथामभय द्रव्यं प्राण वा भावै प्राणोंका प्रियोग करना सो हिंसा है ।

नोट १—जिम समय कोई जती जीव ईयासमितिसे गमन कर रहा हो, यदि उम समय कोई लुट्ट जीव अचानक उसके पैरके नीचे आकर दब जाव तो वह जती उम हिंसा पापना भागी नहीं होगा क्योंकि उनक प्रमाद नहीं है ।

नोट २—एक जीव किसी जीवको मारना चाहता था पर मौका न मिलनस मार न सका तो भी वह हिंसाका भागी होगा क्योंकि वह प्रमाद सहिन है आर अपन भावप्राणोंकी हिंसा करने-वाला है ॥ १३ ॥

असत्यका लक्षण—

**अपदभिधानमनृतम् ॥ १४ ॥**

अर्थ—प्रमादके योगस जीवोंको दुःखदायक वा मिथ्यारूप वचन बोलना सो असत्य है ॥ १४ ॥

स्वयं-चोरीका लक्षण—

**अदत्तादान स्तेयम् ॥ १५ ॥**

अर्थ—प्रमादक योगस विना ढी हुइ किसीकी वस्तुको ग्रहण करना सो चोरी है ॥ १५ ॥

१ पांच इन्द्रिय चार कर्माय चार विक्रया (स्त्री० राज० राष्ट्र० और भोजन०) राग द्वय और निद्रा य १५ प्रमाद हैं ।

२-पांच इन्द्रिय, ३ तीन रत्न आयु और स्वातोच्छ्वास य द्वय प्राण हैं । ३ शानन्दानर्का भाव प्राण कन्त हैं ।

कुण्डालना लक्षण—

**मैथुनमव्रत ॥ १६ ॥**

अर्थ—मैथुनको अव्रत अथवा कुण्डाल कहते हैं ।

मैथुन—चारित्र्यमोदनीय कर्मक उदयस राग परिणाम सहित  
घां पुत्रपौत्रे परम्पर स्पृश कर्मकी इच्छाको मैथुन कहते हैं ॥१६॥

परिमृद पापना लक्षण—

**मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥**

अर्थ—मूर्च्छाको परिग्रह कहते हैं ।

मूर्च्छा—गण्ड घन, धान्यादि तथा अतरङ्ग, प्रोधादि कषायोंमें  
से मर हैं ऐसा भाव रखना सो मूर्च्छा है ॥ ७१ ॥

घनीय प्रीणोपना—

**निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥**

अर्थ—शय रहित जीव ही व्रती है ।

शल्य—जो आत्माको काटकी तरह दुःख दे उसे शल्य कहते  
हैं । उसके तीन भेद हैं— १ मायाशल्य ( छत्रपट करना )  
२ मिथ्यात्वशल्य ( तर्कोंका श्रद्धा न होना ) और ३ निदानशल्य  
आगामी कालमें निषर्षकी बाधा करना ।

जसतक इनमेंसे एक भी शल्य रहती है तसतक जीव व्रती  
वहीं होसक्ता ।

घनीय भेद—

**अगार्थनगारश्च ॥ १९ ॥**

अर्थ—अगामी ( गृहस्थ ) और अगारी ( गृहत्यागी मुनि )  
इस प्रकार जीव वा मर हैं ।







अतिचार

व्रत

सम्यग्दर्शन

- १ अणुव्रत
- २ अर्ध्याणुव्रत
- ३ सत्याणुव्रत
- ४ अचोराणुव्रत
- ५ नमस्त्वराणुव्रत
- ६ परिसंहारिमाणुव्रत

३ गुणव्रत

- १ दिग्व्रत
- २ देशव्रत
- ३ अनर्थद्वन्द्वव्रत

४ शिवाश्रमव्रत

- १ सामासिक
- २ प्रारथोपवाह

३ भोगाभोगपरिमाणव्रत

- ४ अतिथिविभाग
- सन्धेखना

गङ्गा, गार्गीरा, त्रिचिक्विता, अयहृष्टिययना, अयहृष्टिश्रत्य ।

वध वध छेत् अतिभारारापण अन्नयाननिराध ।

भिरगापदेग, रद्यग्याख्यान वृत्लरतत्रिया, यासापहार नारात्मत्रभेद ।

स्तनप्रयोग तत्पाहतादान विच्छेदा यतिव्रत दीनाधिक मानान्मान प्रतिरूपकभ्यारहार ।

पवित्राङ्कण पविट्टीतल्वरिकागमन अपरियत्तविरागमन आत्त नाडा काम्तीकाभिनिवेश ।

शेववास्तु प्रमाणातिव्रत शिष्यमुत्प्रेममाणातिव्रत भनथाप्रमाणातिव्रत दासी दासप्रमाणातिव्रत, उष्य प्रमाणातिव्रत ।

ऊपव्यतिक्रम, अधायतिव्रत, निययतिव्रत भवशुचि, स्मृत्यन्तराधान ।

आनयन प्रत्ययग गदानुपात रूपानुपात, पुद्गलप ।

कदरं वीक्षुय, भोगय असमोराधिपञ्च उपभागपरिभागानयस्य ।

वायदुष्प्रणिधान वायुप्रणिधान, मनोदुष्प्रणिधान, अनार, ग्मृत्युपस्थान ।

अप्रयमिनाप्रमाणिताला, अप्रयमिनाप्रमाणितादान, अप्रयमिनाप्रमाणितास्तरोपवास्य, अनार, सम्यनुपरयान ।

सचित्त सचित्त सव्यथ, सचित्त धर्मिभ अभिरथ, दुपकाहाग ।

सचित्त निरप, सचित्त निधान, परयपदेश मासय, कालव्यतिव्रत ।

वाग्निताशला मरणाशला, मित्रानुराग, सुवानुपथ, निदान ।

अर्थ—एक ब्रवी दिग्गज, दशजत और अनर्थदण्डजत इन तीनों गुणत्रयों तथा सामायिक, प्रोपधापनाम उपभोग परिभोग परिणाम और अनिबिष विभागजत इन चार शिखात्रयोंसे सहित होता है। अथत् ब्रवी श्रावण पाच अणुजत, तीन गुणत्रय और चार शिखात्रय इन प्रकार गण्ट ब्रवीका धारा हाता है।

३ गुणत्रय ।

दिग्जत—गणपयेन सृष्टम प पाकी निवृत्तिकल्पिये दशोन्दिश-  
योम आनानेका परिमाण कय गसम वापर नहीं जाना सो दिग्जत है।

दशजत—जीवनपर्यन्तक लिय किये हुय निश्चयतम और भी सकोच कयक घडी घण्टा जिन गहाना आदि तक किसी एक मुक्ते आदि तक जानाजाना र न सो दशजत है।

अनर्थदण्डजत—प्रयाग रजित पापर्येक क्रियायाका लय कयना मो अनर्थदण्डजत है। इमक पाच भेद है। १ अकारण (हिंसा आरम्भ आदि पापक कामोंका उपदेश दना), २ विद्वान (तल्पार आदि हिंसाक उपकरण दना), ३ अस्थान (दु महु विचारना), ४ दुश्चुति (राग द्वेषका बढानवाला छोटे छोटे मुक्ते) और ५ प्रमादचर्या, (बिना मयाजन यद्वा कय घुला तथा प्रवी आत्मिका ग्वादना ।)

शिखात्रय ।

१ सामायिक—मा वचन कय और कय शक्ति अनुनादनाम

१- जो अणुब्रवीका उपकार करे उणे गुण दना है। -जिनम मनिरतन पालन करनही शिखा मित ग्द गिणित करत है। २- निश्चय और दैगत्रयमें समयकी मर्यादाका अणुका दना है।

पाचा पापोंका त्याग करना सो सामायिक है ।

२ प्राणप्रोषणम्—पल और आगेक दिनोम एकाशनके साथ श्रद्धा और चतुर्थाक दिन उपवास आदि करना प्रोषणोपवाम है ।

३ उपभाग परिभोग परिमाणव्रत—भोग और उपभोगकी वस्तुओंका परिमाण कम मत अधिक ममत्व नहीं करना सो उपभोग परिभोग परम व्रत है ।

४ अतिथि मन्त्रिभागव्रत—अतिथि अर्थात् मुनियोंके लिये शहर काण्ड पीछी बसतिका आदिका दान देना सो अतिथि-सविभागव्रत है ।

व्रतानां सङ्ग्रहना धारणम्भनका उपदेश—

भारणातिर्नी सङ्ग्रहना जोपिता ॥ २२ ॥

अर्थ—गृहस्थ मरणके समय होनेवाली सङ्ग्रहनाको प्रीति पूर्वक सेवन करता है ।

सङ्ग्रहना—इमलोक अथवा परलोक सम्बन्धी किसी प्रयोजनकी अपेक्षा न करके शरीर और कपायक रक्षा करनेको सङ्ग्रहना कहते हैं ॥ २२ ॥

सम्यग्दर्शनक<sup>३</sup> पांच अतिचार<sup>४</sup>—

शकामाक्षाविचिकित्मान्यदृष्टिप्रशसासस्तया

सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥ २३ ॥

१-या एकवार भागनेमें आर । २-जो बार बार भोगनम भावे ।

३-जिम्हा निर्दोष सम्यग्दर्शन हा वही व्रत पाल सकता है, इमलिय परले सम्यग्दर्शनके पांच अतिचार कहते हैं । ४-व्रतके उल्लेख भङ्ग होनेका अतिचार कहते हैं ।

अर्थ—१ शङ्का ( जिनेद्र भगवानके द्वारा कहे हुये सूक्ष्म पदार्थोंमें सन्देह करना अथवा ससभय करना), काक्षा (सामारिक सुबोझी इच्छा करना) विचिकित्सा (दुखी परित्री जीर्णोंको अथवा रत्नत्रयसे पवित्र पर चाद्यम मलिन मुनियोंके शरीरको देख कर ग्गानि करना), अन्यदृष्टिप्रशमा (मनसे मित्र्यादृष्टियोंके ज्ञान आदिको अच्छा सम्यना) और अन्यदृष्टिमन्त्र (मनमें मित्र्यादृष्टियोंकी प्रयासा करना) ये पाच सम्यदर्शनके अतिचार हैं ॥ २३ ॥

५ व्रत और ७ शीलके अतिचारोंकी संख्या—

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥

अर्थ—पाच व्रत और सात शीलमें भी क्रमसे पाच पाच अतिचार होने हैं, जिनका वर्णन आगेके सूत्रोंमें है ॥ २४ ॥

अहिंसाणुव्रतके पाच अतिचार—

वधवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधा ॥ २५ ॥

अर्थ—२न्ध ( इच्छित स्थानमें जानेसे रोकनेके लिये रस्ता आगिसे बाधना ), वध ( कोडा वेंत आदिसे मारना ), छेद् ( नाक कान आदि अङ्गोंका छेदना ), अतिभारारोपण ( शक्तिमें अधिकार लादना ) और अन्नपाननिरोध ( समयपर खाना पीना नहीं देना ) ये पाच अहिंसाणुव्रतके अतिचार हैं ॥ २५ ॥

१ इम्लोकमय, फलकमय, मरणमय, वेदनामय अज्ञानमय, अगुणमय, और आकस्मिकमय ये सात मय हैं ।

सत्य गुणनके अतिचार—

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकृतलेखक्रियान्यासाप-  
हारमाहारमत्रभेदाः ॥ २६ ॥

अर्थ—मिथ्योपदेश ( झूठा उपदेश देना ) रहोभ्याख्यान ( किसीकी एकताकी बातको प्रकट करना ) कृतलेखक्रिया ( झूठे दस्तनेत्र आदि लिखना ) न्यासापहार ( किसीकी धरोहरना अपहरण करना ) यो साकारमत्रभेद ( हाथ चलाया आदिक द्वारा दृग्भेदके अभिप्रायको जानकर उस प्रकृतिको कट देना ) ये पांच सत्यागुणनके अतिचार हैं ॥ २६ ॥

अचौर्यगुणनके पांच अतिचार—

स्तेनप्रयोगतदाहतादानविस्तराज्यातिक्रमहीना-  
धिक्रमानोन्मानप्रतिरूपसव्यवहाराः ॥ २७ ॥

अर्थ—स्तेनप्रयोग ( चोरको चोरीके लिये प्रेरणा करना व उमके उपाय बनाना ), तदाहतादान ( चोरके द्वारा चुराई हुई वस्तुको सहीदना ), विस्तराज्यातिक्रम ( राजाकी आज्ञाके विरुद्ध चलना, टाउनट्यूटी, टेक्स वगैरह नहीं देना )\*, हीनाधिक्रमानोन्मान ( दान लेनेके बाद तगजू वगैरहको कमती बढ़ती रखना ) और प्रतिरूपसव्यवहार ( बहुमूल्य वस्तुमें अल्प मूल्यकी वस्तु मिलाकर असली भावसे बचना ) ये पांच अचौर्यगुणनके अतिचार हैं ॥ २७ ॥

\* अथवा राज्यमें स्थित शानपर अधिक मूल्यकी वस्तुको अल्प मूल्यमें सहीदना और अल्प मूल्यकी वस्तुको अधिक मूल्यमें बचना ।

ब्रतचर्याणुव्रतके पाच अतिचार—

परिविवाहकरणेत्वरिकु परिगृहीतापरिगृहीतागमना-  
नङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥

अर्थ—परिविवाहकरण ( दूबरेके पुत्र पुत्रियोंका विवाह करना ), परिगृहीतेत्वरिकागमन ( पतिमहित व्यभिचारिणी धियोंके पास आना जाना लेनदेन राग, रागभ वपूर्णक बातचीत करना ), अपरिगृहीतेत्वरिकागमन ( पतिमहित वेश्या आदि व्यभिचारिणी धियोंके यहाँ आना जाना लेनदेन आदिरा व्यवहार रखना ), अनङ्गक्रीडा ( कामसेवाके लिये शिक्षित अङ्गको छोड़कर अन्य अङ्गोंसे काम सेवन करना ) और कामतीव्राभिनिवेश ( कामसम्पन्नकी अत्यन्त अभिलाषा रखना ) ये पाच ब्रतचर्याणुव्रतके अतिचार ह ॥ २८ ॥

परिग्रहपरिमाणणुव्रतके अतिचार—

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णपनधान्यदामीदास-  
कुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥ २९ ॥

अर्थ—क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम ( रोत तथा रहनक घण्टक प्रमाणका उ धन करना ), हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम ( चाँदी और सोनेके प्रमाणका उल्लंघन करना ), धन्यग्रान्वप्रमाणातिक्रम ( गाय भेष आदि पशु तथा रेंहू चना आदि अनाजके प्रमाणका उल्लंघन करना ), दासीदामप्रमाणातिक्रम ( नौकर-नौकरानियोंके प्रमाणका उल्लंघन करना ) और कुप्यप्रमाणातिक्रम ( वस्त्र तथा वर्तन आदिके प्रमाणका उल्लंघन करना ), ये पाच परिग्रहपरिमाणणुव्रतके अतिचार हैं ॥

दिग्बन्तके अतिचार—

ऊर्ध्वस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्य-  
न्तराधानानि ॥ ३० ॥

अर्थ—ऊर्ध्व-पतिक्रम (प्रमाणसे अधिक ऊच ईवाले पर्वनादि ए चन्ना) अधोऽव्यतिक्रम (प्रमाणसे अधिक नीचाईवाले गुण आदिम लाना), तिर्यग्व्यतिक्रम (समान स्थानम प्रमाणसे अधिक लम्ब जाना), क्षेत्रवृद्धि (प्रमाण किये हुए क्षेत्रको बढा लेना) और स्मृत्यन्तराधान (किये हुए प्रमाणको भूल जाना) ये पाच दिग्बन्तके अतिचार हैं ॥ ३० ॥

देशबन्तके अतिचार—

आनयनप्रेषप्रयोगशब्दरूपानुपातपुट्टलक्षेपाः ॥ ३१ ॥

अर्थ—आनयन (मय दासे बाहरफी चीजको बुलाना), प्रेष-प्रयाग (मर्यादाक बाहर नौकर आदिको भेजना), शब्दानुपात (स्वामी आदिक शब्दक द्वारा मर्यादासे बहरवाले आदमियोंको अपना अभिप्राय समझा देना), रूपानुपात (मय दासे बाहर रहनेवाले आदमियोंको अपना इरीग दिराकर इशारा करना) और पुट्टलक्षेप (प्रमाणसे बाहर बकर पत्थर पैकना), ये पाच देशबन्तके अतिचार हैं ॥ ३१ ॥

अनर्थदष्टवन्तके अतिचार—

कन्दर्पकौत्कुच्यमौर्यार्थाऽसमीक्ष्याधिकरणोप-  
भोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

अर्थ—कन्दर्प (सगसे हास्य सहित अशिष्ट वचन बोलना),





नुपस्थान ( करने योग्य आउदयक घर्माकार्यको भूल जाना ), ये पांच प्रोपधोपयास शिक्षन्तक अतिचार है ॥ ३४ ॥

उपभोग परिभोग परिमाणघ्नके अतिचार—

मचित्तमम्बन्धसमिथाभिसद्दु पम्प्राहार ॥ ३५ ॥

अर्थ—मचित्ताहार ( जीवसन्धित—हर कर आदिना भक्षण करना ), मचित्तमम्बन्धाहार ( सचित्त पदार्थस सम्बन्धको प्राप्त हुई चीन्का आहार करना ) मचित्तमन्मिथाहार ( सचित्त पदार्थस मिले हुये पदार्थका आहार करना ), अभिप्राहार ( गरिष्ठ पदार्थका आहार करना ) और दु पम्प्राहार ( अथक तथा अधिक कर हुये पदार्थका आहार करना ), ये पांच उपभाग परिभोगघ्नके अतिचार है ॥ ३५ ॥

अतिथिमविभाग घ्नके अतिचार—

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्मर्थकाला

तिक्रमाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सचित्तनिक्षेप ( सचित्त पत्र आदिमें भोजनको रखकर देना ), सचित्तापिधान ( सचित्त पत्र आदिस तक हुये भोजनादिका दान करना ), पर व्यपदेश ( दूमेरे दातारकी वस्तुको देना ), मात्मर्थ ( अनन्दर पूर्वक देना अथवा दूमेरे दातास ईत्या करक दना ) और कालातिक्रम ( योग्य कालका उलघन कर अनारम दना ), ये पांच अतिथिमविभाग घ्नके अतिचार है ॥ ३६ ॥

सहैरणके अतिचार—

जीवितभरणाशमामित्रानुगागमुस्त्रानुवन्

निदानानि ॥ ३७ ॥

अर्थ—जीवित शमा (सेवना धारण कर जीनेको इच्छा र्ना), मरणाशमा (वेदनास लानुल होकर श्राध्न मरनकी वाञ्छा र्ना), मित्रानुगम (मित्रोंका स्मरण करना), सुरानुग्रह व (पूर्वकालमें से हुये सुखोंका स्मरण करना ) और निदान ( आगामी कालमें पर्योक्ती इच्छा करना , य धान महेरना व्रतक अतिचार है ॥ ३७ ॥

नोट—ऊपर कहे हुए ७० अतिचारोंका त्यागी ही निर्दोष ती कहलाता है ।

- दानका लक्षण-

अनुग्रहार्थ स्वस्यातिपर्गो दानम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—(अनुग्रहार्थम्) अपन ओर परके उपकारक लिये स्वस्य) धनादिकका (अतिपर्ग ) त्याग करना (दानम्) दान है ।

नोट—दान दानम अपना उपकार तो यह है कि पुण्यका बध ता है और परका उपकार यह है कि दान लेनेवालेक सम्यग्ज्ञान ादि गुणोंकी वृद्धि होती है ॥ ३८ ॥

दानम विशेषता—

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषत्त द्विशेषः ॥ ३९ ॥

अर्थ—विधिविशेष, द्रव्यविशेष, दातृविशेष और पात्रविशेषस म दानम विशेषता होती है ।

विधिविशेष—नवधामक्तिक क्रमको विधिविशेष कहन हैं ।

द्रव्यविशेष—तप स्वाध्याय आदिकी वृद्धिम कारण आहारको

दातविशेष—श्रद्धा आदि सत्तुण सहित दौतारको दातुविशेष कहते हैं ।

पात्रविशेष—सम्यक्चारित्र आदि गुणसहित मुनि आदिको पात्रविशेष कहते हैं ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते माश्रतास्त्रे सप्तमाध्याय ॥

## प्रश्नावली ।

- (१) व्रती विस कहते हैं ?
- (२) अर्धव्रतकी पाँच भावनाओंको समझाओ ।
- (३) मंत्री प्रमोद कारुण्य और माध्यस्थ भावनाका क्या स्वरूप है ?
- (४) श्याममितिसे चलनवाला मनुष्य अकस्मात् किसी जीवक मरनाके पर पापका भागी हुआ या नहीं ?
- (५) मृच्छाकी क्या परिभाषा है—
- (६) सम्यग्दर्शनके अतिचार बनलाकर सहेयनाका स्वरूप समझाओ ।
- (७) नीच लिग्य हुये शर्दान् अर्थ धतलाओ—माकार मन्त्रमेव विमाचितावास, कुप्य, ऊप्य, व्यतिव्रम, सचित्तममिश्राहार और गत्य ।
- (८) मक्षयमे श्रावकांक व्रतोंका वर्णन करो ।
- (९) लिग्यत और दशव्रतमे क्या अन्तर है ?
- (१०) किस किस गतिमे व्रत धारण स्थिय जासकते हैं ?

## अष्टम अध्याय ।

बधतत्वका वर्णन ।

बधके कारण—

मिथ्यादर्शनाऽविरतिप्रमादऽपाययोगा बन्धहेतवः । १

अर्थ—मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कपाय और योग ये पांच कर्मबन्धके कारण हैं ।

मिथ्यादर्शन—अतत्त्वोंके श्रद्धानको अथवा तत्त्वोंके श्रद्धान न होनेको मिथ्यादर्शन कहते हैं । इसके दो भेद हैं—१ गृहीत मिथ्यादर्शन और २ अगृहीत मिथ्यादर्शन ।

गृहीत मिथ्यादर्शन—परोपदेशक निमित्तसे जो बधतत्व श्रद्धान हो उस गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं ।

अगृहीत मिथ्यादर्शन—परोपदेशक बिना ही कवल मिथ्यात्व कर्मके उच्यते जो हो उसे अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं ।

मिथ्यादर्शनके ५ भेद और भी हैं—१ एकान्त, २ विपरीत, ३ सशय, ४ वैनयिक और ५ अज्ञान ।

एकान्त मिथ्यादर्शन—अनेक धर्मात्मक वस्तुमें यह इसी प्रकार है, इस तरहके एकान्त अभिप्रायको एकान्त मिथ्यादर्शन कहते हैं । जैसे—गौद्ध मतवाले वस्तुको अनित्य ही मानते हैं और वदाती सर्वथा नित्य ही मानते हैं ॥ अन्न=धर्म, गुण ।

विपरीत मिथ्यादर्शन—पश्चिह्न सहित भी गुरु हो सक्ता है, कवची कपलाहार करते हैं, स्त्रीको भी मोक्ष प्राप्त हो सक्ता है इत्यादि उल्टे श्रद्धानको विपरीत मिथ्यादर्शन कहते हैं ।

सशय मिथ्यादर्शन—मध्यदर्शन, सम्यग् १ और सम्यक्-  
चाग्रि ये दोषक मार्ग हैं अथवा नहीं, इस प्रकारके चर्चायमान  
श्रद्धानको सशय मिथ्यादर्शन कहते हैं ।

वैनयिक मिथ्यादर्शन—सम प्रकारक देवोंको तथा सम प्रकारक  
मर्तोंको स्मान मानना वैनयिक मिथ्यादर्शन है ।

अज्ञान मिथ्यादर्शन—अज्ञानकी परीक्षा न करके श्रद्धान  
करना अज्ञान मिथ्यात्व है ।

अविगति—छह कायक जीवोंकी तिसाके त्याग न करना और  
५ इन्द्रिय तथा मनके विषयोंमें प्रवृत्ति करनेको अविगति कहते हैं ।  
इसके बारह भेद हैं—पृथिवीकायिकाविरति, जलकायिकाविरति इत्यादि ।

प्रमाद—५ समिति ३ गुप्ति ८ शुद्धि\* १० धर्म इत्यादि  
अच्छे कार्योंमें उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति न करनेको प्रमाद कहते हैं । X

इसके १५ भेद हैं ।

कषाय—इसके २५ भेद हैं ।

योग—इसके १५ भेद हैं—४ मनोयोग, ४ वचनयोग और  
७ काययोग ।

नोट—ये मिथ्यादर्शन आदि सम्पूर्ण तथा पृथक् पृथक् बंधके  
कारण हैं । अथत् किमीके पाचों ही बंधक कारण हैं, किमीके

१-पांच स्थानर और व्रत में उद्द कायके जाय हैं ।

\* १ भावशुद्धि २ कायशुद्धि ३ विचारशुद्धि, ४ इन्द्रियशुद्धि

५ भक्त्यशुद्धि ६ प्रतिष्ठापनशुद्धि ७ शयनासनशुद्धि, और ८ वाक्यशुद्धि ।

X प्रमाद और कषायमें सामान्य विशेषका अन्तर है ।

अविनि आदि ४, किमीक ममाद आदि ३, किसीक कपाय आदि २ और किमीका मिर्क एक योग ही बधका कारण है ॥ १ ॥

बधका लक्षण—

मरुपायत्त्राजीव, कर्मणा योग्यान्पुद्गलानादत्ते  
स बन्धः ॥ २ ॥

अर्थ—(जीव) जीव (मरुपायत्त्रात्) कपाय सहित हानसे (कर्मणा) कर्मके (योग्यान्) योग्य (पुद्गलान्) कार्मण वर्णा-रूप पुद्गल परमाणुओंको जो (आदत्ते) ग्रहण करता है (स) बध (बन्ध) बध है।

भावार्थ—सम्पूर्ण लोकम कामण वर्णा रूप पुद्गल भरे हुए हैं। कपायसे निमित्तसे उनका आत्माक साथ सम्बन्ध होनाता है। यही बध कहलाता है।

नोट—इस सूत्रमें 'कर्मयोग्यान्' ऐसा समास १ कर्मके जो अलग अलग ग्रहण किया है उससे सूत्रका यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि "जीव कर्मसे मरुपाय हाता है और मरुपाय होनासे कर्मरूप पुद्गलोंको ग्रहण करना है यही बध कहलाता है" ॥ २ ॥

३ अके भेद—

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रकृति बध, स्थिति बध, अनुभाग बध और प्रदेश बध ये बधक चार भेद हैं।

प्रकृति स्थिति—कपायसे कर्मरूपको प्रकृति स्थिति बध है।

स्थिति बन्ध—ज्ञानावरणादि कर्माका अपने स्वभावसे च्युत नहीं होना सो स्थिति बन्ध है ।

अनुभाग बन्ध—ज्ञानावरणादि कर्माके रसविशेषको अनुभाग बन्ध कहते हैं ।

प्रदेश बन्ध—ज्ञानावरणादि कर्मरूप होनेवाले पुद्गल स्वर्णोंके परमाणुओंकी सत्ताको प्रदेश बन्ध कहते हैं ।

नोट—इन चार प्रकारके बंधोंमें प्रकृति और प्रदेश बन्ध योगके निमित्तसे होते हैं तथा स्थिति और अनुभाग बन्ध कर्माके निमित्तसे होते हैं ॥ ३ ॥

प्रकृत घटका घणन-प्रकृति बन्धके मूल भेद—

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नाम-  
गोत्रान्तराया ॥ ४ ॥

अर्थ—पहला प्रकृति बन्ध—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ऐसे आठ प्रकारका है ।

ज्ञानावरण—जो आत्माके ज्ञान गुणको घाते उसे ज्ञानावरण कहते हैं ।

दर्शनावरण—जो आत्माके दर्शनगुणको घाते उसे दर्शनावरण कहते हैं ।

वेदनीय—जिम्में उदयस जीवांको सुख दुःख पाव उस वेदनीय कहते हैं ।

मोहनीय—जिसमें उदयसे जीव अपने स्वरूपको भ्रूकर-बन्धको अपना समझने लगे उसे मोहनीय कहते हैं ।

आयु—जो इस जीवको नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवमें से किसी शरीरमें रोक रखे उस आयु कर्म कहते हैं ।

नाम—जिसके उदयसे शरीर आदिकी रचना हो उसे नामकर्म कहते हैं ।

गोत्र—जिसके उदयसे यह जीव ऊँच नीच कुलमें पैदा होव उसे गोत्रकर्म कहते हैं ।

अन्तराय—निम्न उदयसे दान लाभ भोग उपभोग और वीर्यमें विघ्न आब उसे अन्तराय कर्म कहते हैं ।

नोट—उक्त आठ कर्मोंमेंसे ज्ञानावरण दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातिया ( जीवके अनुनीचि गुणोंके घातनेवाले ) हैं और बाकीक चार कर्म अघातिया ( प्रीतिनीचि गुणोंके घातनेवाले ) हैं ।\*

प्रकृति बचके उत्तर भेद—

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्च-  
भेदा यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

अर्थ—उपर कहे हुए ज्ञानावरणादि कर्म क्रमस १, ७, २, २८, ४, ४२, २ और ५ भेद वाले हैं ॥ ५ ॥

१-सञ्चार रूपगुण, ७-जभाव रूप गुण । \* ज्ञान प्रकार एक ही चार स्थाया हुआ भोजन रख मृदु आदिक नाना रूप हाताता है उम तरह एकवार ग्रहण किया हुआ कर्म ज्ञानावरणादि अनक भेद रूप हा जाता है । विन्यता यह है कि भोजन रख, मृदु आदि रूप क्रम क्रम होता है, परन्तु कर्म ज्ञानावरणादि रूप एक साथ होजाता है ।



ज्ञानावरणक पाच भेद—

मतिश्रुताग्रधिमन पर्ययकवलानाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—मतिचानावरण ( मतिचानको ढाकनोमाला ), श्रुत  
ज्ञानावरण ( श्रुतचानको ढाकनोमाला ), अग्रधि ज्ञानावरण ( अग्रधि-  
ज्ञानको ढाकनोमाला ), मन पर्यय ज्ञानावरण ( मन पर्यय ज्ञानको  
ढाकनोमाला ) ओर कैवल जानावरण ( कवलचानको ढाकनोमाला )  
ये पाच चानावरण कर्मक भेद है ॥ ६ ॥

दशनावरण कर्मके भेद—

वक्षुरचक्षुवधिकेरलाना निद्रानिद्रानिद्राप्रचला

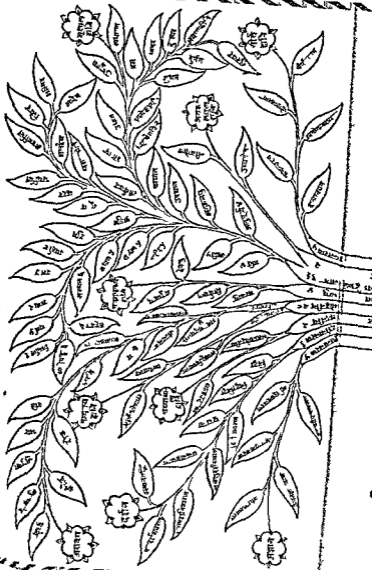
प्रचलाप्रचलास्त्यानगृह्यश्च ॥ ७ ॥

अर्थ—चक्षुर्दर्शनावरण, अक्षुर्दर्शनावरण, अग्रधि दर्शनावरण,  
कवल दर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और  
स्त्यानगृह्य ये नौ दर्शनावरण कर्मक भेद है ।

चक्षुर्दर्शनावरण—जो कर्म चक्षु इन्द्रियोमें होनेवाले सामान्य  
अवरोक्तो न होन दे उस चक्षुर्दर्शनावरण कहत है ।

अक्षुर्दर्शनावरण—जिस कर्मक उदयस चक्षु-इन्द्रियको  
छोडकर नेत्र इन्द्रियो तथा मनसे पदार्थका सामान्य अवरोक्तन न हो  
सक उस अक्षुर्दर्शनावरण कहत है ।

अग्रधि दर्शनावरण—जो कर्म अग्रधिनानसे परे होनवाले  
सामान्य अवरोक्तनको न होन दे उस अग्रधि दर्शनावरण कहते है ।









केवलदर्शनापरण—जो कर्म केवलज्ञानके साथ होनेवाले सामान्य अवगोचरको न होने व उसे केवलदर्शनापरण कहते हैं ।

निद्रा—मद स्वेत् भ्रम आदिको दूर करनेके लिये जो शयन कृत है सो निद्रा है । वह निद्रा जिस कर्मके उदयमें हो वह कर्म निद्रा दर्शनावरण है ।

निद्रानिद्रा — नींदके बाद फिर २ नींद आनको निद्रानिद्रा कहते हैं । निद्रानिद्रा वशीभूत होकर जीव अपनी आत्माको नहीं सोल सकता ।

प्रचला—बेठ २ नत्र शरीर आदिमें विकार कगवाली, शोक तथा थकावट आदिसे उत्पन्न हुई नींद प्रचला कहलाती है । प्रचलाके वशीभूत हुआ जीव सोता हुआ भी जागता रहता है ।

प्रचलाप्रचला—प्रचलाके ऊपर प्रचलाके आगेको प्रचलाप्रचला प्रकृति कहते हैं । प्रचलाप्रचलाके द्वारा शयन अवस्थामें मुँहमें रार बहन लगती है तथा अङ्गोभङ्ग चलने लगते हैं ।

स्त्यानगृद्धि—जिम निद्राके द्वारा सोती अवस्थाम भी नाना तरहके आर्त कर्म का डाले ओर जागने पर कुछ मात्रम ही न हो कि मैंने क्या किया है उसको स्त्यानगृद्धि कहते हैं । \* ॥ ७ ॥

१—उपर्युक्त चीजोंके दान और ज्ञान प्रकृत होते हैं अर्थात् पहले ज्ञान बादमें ज्ञान । परन्तु केवली भगवान्के दोनों एक-मात्र होते हैं क्योंकि उनका राधक क्रमोंका एक साथ क्षय होता है ।

\* यह पांच तरहकी निद्रा जिम कर्मके उदयसे होता है वह निद्रा अवरण जाति कर्मभेद कर्तव्यता है ।

वर्गीयक भेद—

मदमद्वये ॥ ८ ॥

अर्थ—मद्वय की व्याख्या ३ को देखनीय वर्गीयक भेद है ।

मद्वय—प्रति ३, ३ का द्वय द्वयों का द्वय द्वय मानलिये द्वय द्वय ही का द्वय द्वय है ।

अद्वय—द्वय द्वय का द्वय द्वयों का द्वय द्वय द्वय ही का द्वय द्वय है ॥ ८ ॥

वर्गीयक भेद—

दर्शनचात्रिमोदनीया रूपाय रूपाय वेदनीयान्या  
स्त्रिद्विनरपोडशभदा, मय्यत्त्वमिग्यात्वनदुभया  
न्यरूपाय रूपायो हास्यरत्परतिशो रूभयजुगुप्सासी  
पुनपुमस्वेदा अनतानुप्रथ्यप्रत्याम्यानप्रत्याम्यान-  
सञ्चलनविकृत्याधो रश. क्रोधमानमायालोभा ॥९

अर्थ—दर्शन मोदनीय, चात्रिय मोदनीय काय वेदनीय और  
व्याख्या वेदनीय इन चार भेदों का वर्गीयक भेद वर्गीयक भेद दो दो  
और सोड भेदका है । चिन्मोद मय्यत्त्व, द्विग्यात् और मय्यत्त्व  
ख्याल ये तीन दर्शन मोदनीय वर्गीयक भेद हैं । व्याख्या वेदनीय और  
व्याख्या वेदनीय ये दो भेद चात्रिय मोदनीयके हैं । हास्य, रति, अस्त्रि-  
शोक, मय, जुगुप्सा, मीकद, पुंवर और जुगुप्साद य ९-व्याख्या  
वेदनीयके भेद हैं और अनन्तजुगुप्सी, अमय्यत्त्व, द्विग्यात् और

,सञ्चलन इन चार भेद स्वरूप बोध मान माया लोभ ये सोरह भेद  
कणाय वेदनीयके हैं ।

भारार्थ—मोहनीय कर्मके मुख्यमें दो भेद हैं, १ दर्शनमोहनीय  
और २ चारित्र मोहनीय। उनमें दर्शनमोहनीयके तीन और चारित्र  
मोहनीयके २५ इस प्रकार कुल मिलाकर मोहनीय कर्मके २८ भेद हैं।

मिथ्यात्व प्रकृति—जिम कर्मिक द्वारा सर्वत्र कदित मार्गसे  
पराङ्मुखता हो अथात् मिथ्यादर्शन हो उस मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं।

सम्भवत्व प्रकृति—जिम प्रकृतिर उद्यमे आत्माके सम्य  
दर्शनमें दोष उत्पन्न हो उस सम्भवत्व प्रकृति कहते हैं ।

सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति—जिम प्रकृतिक उद्यमस मिले हुए  
वही गुडके स्वादकी तरह उभयरूप परिणाम हो उसे सम्यङ्मिथ्यात्व  
प्रकृति कहते हैं ।\*

हास्य—जिमके उद्यमसे हँसी आब वह हास्य नोकयाय है ।

रति—जिमके उद्यमसे विषयोंमें प्रेम हो वह रति है ।

अरति—जिसके उद्यमसे विषयोंमें प्रेम न हो वह अरति है ।

शोक—जिमके उद्यमसे शोच चिंता हो वह शोक है ।

भय—जिसके उद्यमसे डर लगे वह भय है ।

जुगुप्सा—जिसके उद्यमसे भ्रान्ति हो वह जुगुप्सा है ।

१-जा आत्माके सम्यक्त्व गुणका घाते । २-जा आत्माके चारित्र  
गुणको घाते ।

\* सम्यक्त्व प्रकृति और मिथ्यात्व प्रकृति इन दो प्रकृतियोंका  
नहीं होता किन्तु आत्माके शुभ परिणामोंसे मिथ्यात्व प्रकृतिका अनुभाग  
शक्ति हीन हाजानेसे इन २ प्रकृतिरूप परिणमन होजाता है ।





- ' नोट—इन क्पाथोंम आगे आगे मन्दता है और नीचे नीचे तीव्रता है ॥ ९ ॥

आयुर्कर्मके भेद—

नारक्तैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥

अर्थ—नारकायु, तिर्यगायु मानुषायु और दवायु ये चार आयुर्कर्मके भेद हैं ।

नारकायु—निम्न कर्मके उदयमें जीव नास्कीक शरीरमें रक्ता रहे उस नारकायु कहते हैं । इसीतरह सत्र भेदोंमें समझना चाहिये ॥ १० ॥

गामकर्मके भेद—

गति<sup>१</sup>जाति<sup>२</sup>शरीर<sup>३</sup>गोपा<sup>४</sup>गनि<sup>५</sup>माण<sup>६</sup>वधन<sup>७</sup>सघात<sup>८</sup>मस्था-  
न<sup>९</sup>सहनन<sup>१०</sup>स्पर्श<sup>११</sup>रस<sup>१२</sup>गन्ध<sup>१३</sup>वर्ण<sup>१४</sup>ानु<sup>१५</sup>पूर्व्या<sup>१६</sup>गु<sup>१७</sup>स्त्व<sup>१८</sup>पघात<sup>१९</sup>पर-  
घात<sup>२०</sup>तपो<sup>२१</sup>त्यो<sup>२२</sup>तो<sup>२३</sup>च्छ्वा<sup>२४</sup>म<sup>२५</sup>पिहा<sup>२६</sup>योग<sup>२७</sup>तयं<sup>२८</sup>. प्रत्येकश-  
रीर<sup>२९</sup>त्रय<sup>३०</sup>सुभग<sup>३१</sup>सुस्वर<sup>३२</sup>शुभ<sup>३३</sup>मृक्ष<sup>३४</sup>प्रपर्या<sup>३५</sup>सि<sup>३६</sup>स्थिरा<sup>३७</sup>देय<sup>३८</sup>यशः<sup>३९</sup>  
कीर्ति<sup>४०</sup>सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥

अर्थ—गति, जाति, शरीर, अङ्गोपाङ्ग, निमाण, वधन, मघात, मस्थान, सहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुस्त्व, उपघात, परघात, आतप, उद्योग, उद्ग्राम ये अङ्गीम तथा प्रत्येक शरीर, त्रय, सुभग, सुस्वर, शुभ, सूक्ष्म, पर्याप्ति, स्थिर, आदेय, यश-कीर्ति ये दश तथा इनमें उरुटे साधारण म्हावर, दुर्भग, दुस्वर, अशुभ, स्थूल, अप-



रिक शरीराङ्गोपाङ्ग, २ वैकृत्यिक शरीराङ्गोपाङ्ग और १३ आहारक शरीराङ्गोपाङ्ग । निम्न उदयसे औदारिक शरीरक अंग और उपाङ्गोंकी रचना हो उसे औदारिक शरीराङ्गोपाङ्ग नामकर्म कहते हैं । इसी प्रकार शेष दो भेदोंक लक्षण समझना चाहिये\* ।

५ निर्माण—निम्न कर्मक उदयसे अङ्गोपाङ्गोंकी यथास्थान और यथाप्रमाण रचना हो उस निर्माण नामकर्म कहते हैं ।

६ बन्धन नामकर्म—शरीर नामकर्मके उदयसे ऋण किये हुए पुत्रल श्कन्धोंका परम्पर सम्बन्ध निम्न कर्मके उदयसे होता है उसे बन्धन नामकर्म कहते हैं । इसमें पाच भेद हैं—औदारिक बन्धन नामकर्म, २ वैकृत्यिक बन्धन नामकर्म, ३ आहारक बन्धन नामकर्म, ४ तैजस बन्धन नामकर्म और ५ कार्मण बन्धन नामकर्म । जिसके उदयसे औदारिक शरीरक परमाणु दीवालमें लगे हुये ईट और गारेकी तरह छिद्र सहित परम्पर सम्बन्धको प्राप्त हों वह औदारिक बन्धन नामकर्म है—इसीप्रकार अन्य भेदोंका लक्षण जानना चाहिये ।

सघात नामकर्म—निम्न कर्मक उदयसे औदारिकादि शरीरोंके प्रदेशोंका छिद्र रहित बन्ध हो उस सघात नाम कहते हैं । इसके भी ५ भेद हैं । औदारिक सघात आदि ।

८ मस्थान नामकर्म—निम्न कर्मके उदयसे शरीरक मस्थान

\* दा हाय ७ पाव, निम्न, पाठ वगैरह और मस्तक य ८ अङ्ग हैं तथा अगुलि आदि उपाङ्ग हैं । ' जल्पा बाहू य तथा निम्न प्रणि उगे य सीष्ठा य । अह य दु अगाह देह संगा उवगाह ॥ '

अथत् आकार बने उसे सस्थान नामकर्म कहते हैं। इसके ६ भेद हैं—  
१ समचतुर्गुणसस्थान नामकर्म, २ त्र्योदधपरिमण्डलसस्थान, ३ स्वाति  
सस्थान, ४ कुञ्चकसस्थान, ५ वामनसस्थान और ५ हुण्टकसस्थान ।

निम कर्मक उदयमे जीवका शरीर ऊपर नीचे तथा बीचमें  
समान भागत्प अथत् मुटौल हो उस समचतुर्गुणसस्थान कहत है ।  
त्रिम कर्मक उदयम जीवका शरीर बटवृक्षकी तरह नाभिमे नाचे पतला  
और ऊपर मोटा हो उस त्र्योदधपरिमण्डलसस्थान कहत है । निम  
कर्मके उदयस जीवका शरीर सर्पकी वामीकी तरह ऊपर पतला और  
नीचे मोटा हो उस स्वातिसस्थान नामकर्म कहत है । त्रिम कर्मके  
उदयसे जीवका शरीर तुण्डा हो उस कुञ्चकसस्थान नामकर्म कहते  
हैं । निम कर्मक उदयम मोटा शरीर हो उसे वामनसस्थान नाम  
कर्म कहते हैं । और निम कर्मके उदयस शरीरक अत्रोपाङ्ग किमी  
सास आहतिक न हों उस हुण्टकसस्थान नामकर्म कहत है ।

९ महनन नामकर्म—निम कर्मक उदयस हृदिये क बधनमें  
विशेषता हो उस महनन नामकर्म कहते हैं । इसके ६ भेद हैं—  
१ वज्रभेभनाराच महनन, २ वज्रनाराच महनन, ३ नाराच महनन  
४ अर्द्धनागच महनन, ५ कीलक महनन, और ६ अस्यामसपाटिका  
महनन ।

निम कर्मक उदयसे वृषभ ( वज्रन ), नागच ( कील ) और  
महनन ( हृदिया ) वज्रकी ही हों उसे वज्रभेभनाराच महनन नाम  
कर्म कहत है ॥ १ ॥ त्रिम कर्मक उदयम वज्रक हाट और वज्रकी  
हों परंतु वज्रन वज्रके न हों उसे वज्रनाराच महनन

नामकर्म कहते हैं ॥ २ ॥ जिसके उदयसे सामान्य बह्वन और कीली सहित टाड हीं उसे बह्वनाराच सहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ३ ॥ निमके उदयसे हड्डियोंकी सधिया अर्धकीन्त्रित हों उसे अर्धनाराच सहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ४ ॥ जिमके उदयसे हड्डिया फस्पर कीलित हों उस कीलक सहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ५ ॥ और जिसके उदयसे जुदी जुदी हड्डिया नर्मोंसे बधी हुई हों फस्परमें कीलित नहीं हों उस अमप्राप्तसृपाटिकासहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ६ ॥

१० स्पर्श—जिमके उदयसे शरारम स्पर्श हो उस स्पर्श नाम कर्म कहते हैं । इसके आठ भेद हैं—१ कोमल, २ कठार ३ गुरु, ४ लघु, ५ शीत, ६ उष्ण, ७ म्लिग्ग, और ८ रूक्ष ।

११ रस—जिमके उदयसे शरीरमें रस हो वह रस नामकर्म कहलाता है । इसके ५ भेद हैं—१ तिक्त ( चरपा ), कटु ( कटुवा ), कषाय ( कषायला ), आम्ल ( राट्टा ) और मधुर ( मीठा ) ।

१२ गन्ध—जिमके उदयसे शरीरमें गन्ध हो उसे गन्ध नाम कर्म कहते हैं । इसके दो भेद हैं—१ सुगन्ध, २ दुर्गन्ध ।

१३ वर्ण—जिमके उदयसे शरीरमें वर्ण अथवा रूप हो वह वर्ण नामकर्म है । इसके पांच भेद हैं—१ शुद्ध, २ कृष्ण, ३ नील, ४ रक्त और ५ पीत ।

१४ आनुपूर्त्य—जिस कर्मके उदयमें विप्रत गतिमें मरणसे पहलेके शरीरके आकार आत्मारु प्रदश रहने हैं उसे आनुपूर्त्य नाम कर्म कहते हैं । इसके चार भेद हैं—१ नरक गत्यानुपूर्त्य, २ तिर्यगात्यानुपूर्त्य, ३ मानव्यात्यानुपूर्त्य और ४ त्रेत्यानुपूर्त्य ।

जिम समय आत्मा मनुष्य अथवा तिर्यञ्च आयुको पूर्ण कर पूर्व शरीरसे पृथक् हो नरकमवक प्रति जानको सम्मुख होता है उस समय पूर्व शरीरक आकार आत्माक प्रत्येक निस कर्मक उदयसे होने हैं उस नरकगत्यानुपूर्व्य कहते हैं । इमीप्रकार अन्य भेदोंक लक्षण जानना चाहिये ।

१५ अगुरुलघु नामकर्म—जिम कर्मके उदयसे जीवका शरीर लोहेक गोलेकी तरह भारी और आकक तूल्की तरह हल्का न हो बट अगुरुलघु नामकर्म है ।

१६ उपघात—जिम कर्मके उदयसे अपन अह्वास अपना घात हो उसे उपघात नामकर्म कहत है ।

१७ परघात—जिमके उदयसे दुमरेका घात करनेवाले अज्ञोपाह्न हों उसे परघात नामकर्म कहते हैं ।

१८ आताप—जिस कर्मके उदयसे आतापरूप शरीर हो उसे आताप नामकर्म कहते हैं ।\*

१९ उद्योत—जिसके उदयम उद्योतरूप शरीर हो उसे उद्योत नामकर्म कहते हैं ।x

२० उच्छ्वास—जिमके उदयस शरीरमें उच्छ्वास हो उस उच्छ्वास नामकर्म कहन हैं ।

२१ निहायोगति—जिसके उदयसे आकाशम गमन हा उसे

\* इसका उदय सूर्यके विमानम स्थित बादर पथमक पृथिवीकायिक अर्वाक बाता है । x इसका उदय चन्द्रमाके विमानमें स्थित पृथिवीकायिक अर्वाक तथा स्वयं (उग्र) नामक चतुरिन्द्रिय जीवक होता है ।

विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं—१ प्रशस्त विहायो-  
गति ओर २ अप्रशस्त विहायोगति।

२२ प्रत्येक शरीर—जिस नामकर्मक उदयसे एक शरीरका  
एक ही जीव स्वामी हो उसे प्रत्येक शरीर नामकर्म कहते हैं।

२३ साधारण शरीर—जिस उदयसे एक शरीरक अनेक  
जीव स्वामी हों उसे साधारण शरीर नामकर्म कहते हैं।\*

२४ त्रय नामकर्म—जिस उदयसे द्वीन्द्रियादिक जीवोंमें  
त्रय हो उसे त्रय नामकर्म कहते हैं।

२५ स्थान नामकर्म—जिस कर्मक उदयसे एकन्द्रिय जीवोंमें  
जन्म हो उसे स्थान नामकर्म कहते हैं।

२६ सुभग नामकर्म—जिस उदयमें दूसरे जीवोंको अपनसे  
प्रीति उत्पन्न हो उसे सुभग नामकर्म कहते हैं।

२७ दुर्भग नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे रूपादि गुणोंसे  
युक्त होनेपर भी दूसरे जीवोंको अप्राप्ति उत्पन्न हो उसे दुर्भग नामकर्म  
कहते हैं।

२८ सुस्वर—जिस उदयसे उत्तम स्वर ( आवाज ) हो उसे  
सुस्वर नामकर्म कहते हैं।

२९ दुस्वर—जिस उदयसे रसान स्वर हो उस दुस्वर  
नामकर्म कहते हैं।

३० शुभ—जिस उदयसे शरीरके अवयव सुन्दर हों उसे  
शुभ नामकर्म कहते हैं।

\* इसका उदय निपादिया वन्स्पतिनायिक जीवोंक होता है।



अन्तराय कर्मक भेद—

**दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ १३ ॥**

अर्थ— दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये अन्तरायकर्मक ५ भेद हैं । निम्नके उदयसे दानकी दृष्टि रचना हुआ भी दान न कर सक उस दानान्तराय कर्म कहत हैं । इसीप्रकार अन्य भेदोंक भी लक्षण समझना चाहिये ॥ १३ ॥

स्थितिरन्धका वर्णन—

ज्ञानावरण दर्शनावरण, ज्ञेयनाय और अन्तरायका उत्कृष्ट स्थिति—

**आदितस्तिमृणामतरायस्य च त्रिंशत्सागरो-**

**पमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥**

अर्थ—आदित्क तीन—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, बदनीय और अन्तराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोडी सागरकी है ।

नोट—गिथ्यादृष्टि मही पञ्चेन्द्रिय पयसक जीवके ही इस उत्कृष्ट स्थितिमा बाध होना है । × ॥ १४ ॥

मोहनाय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति—

**सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥**

अर्थ—मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोडी सागरकी है ॥ १५ ॥

नाम और गोत्रकी उत्कृष्ट स्थिति—

**विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥**

× एह करदम एक करोडना गुणा करनैपर जो गुणनफल आवे उसे काटाकोडी कहत हैं ।

अर्थ—नामकर्म और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बीम कोडा-  
कोड़ी सागरकी है ॥ १६ ॥

आयुक्मनी उत्कृष्ट स्थिति—

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुप ॥ १७ ॥

अर्थ—आयुक्मकी उत्कृष्ट स्थिति ततीस सागरकी है ॥ १७ ॥

घटनायकर्मनी जघन्य स्थिति—

अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥

अर्थ—वन्नीय कर्मकी जघन्य स्थिति बारह मुहूर्तकी है ॥ १८ ॥

नाम और गोत्रकी जघन्य स्थिति—

नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥

अर्थ—नाम और गोत्रकर्मकी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्तकी है ॥ १९ ॥

शेष पाच कर्मोंकी जघन्यस्थिति—

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥ २० ॥

अर्थ—शेष रहे पानावाण, दर्शनावरण, मोहनीय अन्तराय  
और आयु कर्मकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है ॥ २० ॥

अनुभव (अनुभाग) बंधका वणेन ।

अनुभव बंधका लक्षण—

विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥

१-दा घटी अथात् ४८ मिनटका एक मुहूर्त होता है ।

२-आवनास ऊपर और मुहूर्तमें नीचे वालो अन्तर्मुहूर्त कहते हैं । असल्यात समयोंकी एक आवली होती है ३ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

अथ—स्वाधीकी तीव्रता मन्दता अथवा मध्यमतासे जो आम्र वमें विद्यता होती है उससे होनेवाले विशेष पाकको विपाक कहते हैं । अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भद्र, भावसे निमित्तक वशसे नाना रूपताका प्राप्त होनासे पाकको विपाक कहते हैं । और इस पाकको ही अनुभव अर्थात् अनुभागबन्ध कहते हैं\* ।

नोट १—शुभ परिणामोंकी अधिकता होने पर शुभ प्रवृत्तियोंमें अधिक और अशुभ प्रवृत्तियोंमें हीन अनुभाग होगा है ।

नोट २—अशुभ परिणामोंकी अधिकता होनेपर अशुभ प्रवृत्तियोंमें अधिक और शुभ प्रवृत्तियोंमें हीन अनुभाग होता है ।

### स यथानाम ॥ २२ ॥

अथ—वह अनुभाग वर कर्मोंके नामानुसार ही होता है ।

भारार्थ—जिस कर्मका जैसा नाम है उसमें वैसा ही अनुभाग बन्ध पड़ता है जैसे चानावरण कर्ममें ' चानको रोकना ', दर्शनावरण कर्ममें ' दर्शनको रोकना ' आदि ॥ २२ ॥

पर द चुम्बनेके बाद कर्माका क्या होता है ?—

### ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥

अर्थ—तीन मन्द या मध्यम फल द चुम्बनेके बाद कर्मोंकी निर्जरा होजाती है । अथत् कर्म उठयमें आकर आत्मासे पृथक् हो जात है ।

निर्जाराक दो भेद हैं—१ सविपाक निर्जरा और २ अविपाक निर्जरा ।

सविपाक निर्जरा—शुभ अशुभ कर्मोंको जिस प्रकार बाधा

\* ' विविध पाक , अथवा 'विविध पाक विपाक ।'

५	मिथ्यादान	१२	अविरति	प्रमाद	कथाव	१५-५७	योग
---	-----------	----	--------	--------	------	-------	-----

इन्द्रियाविरति

- १ स्वप्नद्रियाविरति
- २ रसनद्रियाविरति
- ३ घ्राणद्रियाविरति
- ४ धनुर्द्रियाविरति
- ५ कर्णेन्द्रियाविरति
- ६ मनाद्रिरति

कथाव

- १ अनन्ता
- २ श्लोष
- ३ मान
- ४ माया
- ५ लोभ

- १ अमर्या
- २ म्नाच
- ३ मान
- ४ माया
- ५ लोभ

- १ सज्जलन
- २ म्नाच
- ३ मान
- ४ माया
- ५ लोभ

नोकथाव

- १ हास्य
- २ रति
- ३ अरति
- ४ शाक
- ५ भय
- ६ युगप्सा
- ७ खीन्द
- ८ पुषद
- ९ नपुसकवद

कावयोग

- १ औदारिक कावयोग
- २ औदारिक मिश्रकावयोग
- ३ वैनिक कावयोग
- ४ वैकिक मिश्रकावयोग
- ५ आहारिक कावयोग,
- ६ आहारिक मिश्रकावयोग
- ७ कर्मण कावयोग ।

वचनयोग

- १ सत्य वचनयोग
- २ असत्य वचनयोग
- ३ उभय वचनयोग
- ४ अनुभय वचनयोग
- ५ सत्य मनायोग
- ६ असत्य मनायोग
- ७ उभय मनायोग
- ८ अनुभय मनायोग

मनायोग

## कर्मप्रकृति भेद तथा स्थितिवन्ध ।

नं०	कर्म	भेद	उन्वृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति
१	ज्ञानावरण	१	३० काडाकाडा सागर	अन्तमुहूर्त
२	दशनावरण	१	३० कोडाकाडी सागर	
३	उदनीय	२	३० काटाकाणी सागर	१२ सुहृत
४	माहनाय	२८	३० काणाकाडी सागर	अन्तमुहूर्त
	आयु	४	३३ सागर	
५	नाम	१३	२० काडाकाडी सागर	८ सुहूर्त
६	गाय	२	२ काडाकाडी सागर	८ सुहृत
७	अन्तगाय		३० काडाकाणी सागर	अन्तमुहूर्त

था उमीप्रकार स्थिति पूर्ण होनेपर फल देकर आमासे पृथक् होनेको मन्त्रिपाक निर्जरा कहते हैं ।

अन्त्रिपाक निर्जरा—उदयकाल प्राप्त न होनेपर भी तप आदि उपायोंसे बीचम ही फल भोगकर स्विग देनेको अन्त्रिपाक निर्जरा कहते हैं ।

नोट—इस सूत्रमें जो ' च ' शब्दका ग्रन्थ किया है उससे तम अभ्यासक ' तपमा निर्जग च ' इस सूत्रमें मन्त्रध सिद्ध होता है, निम्न यह सिद्ध हुआ कि कर्माकी निर्जग तपसे भी होती है, अथवा उक्त दो प्रकारकी निर्जरा कारण त्रयसे कर्माका विपाक और तपश्चरण है ॥ २३ ॥

प्रदेशमन्त्रका वर्णन ।

प्रदेशमन्त्रका स्वरूप-

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिता. सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥२४॥

अर्थ—( नामप्रत्यया ) नानावर्णादि कर्मप्रवृत्तियोंके कारण, ( सर्वतो ) सब ओरसे अथवा देव नारकादि समस्त सर्वोंमें ( योग विशेषात् ) मन एवम कायरूप योग विशेषमें ( सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिता ) सूक्ष्म तथा एकक्षेत्रावगाहरूप स्थित ( सर्वात्मप्रदेशेषु ) सम्पूर्ण आत्माके प्रदेशोंमें जो ( अनन्तानन्तप्रदेशा ) कर्मरूप पुद्गलके अनन्तानन्त प्रदेश हैं उनको प्रदर्शवच कहते हैं ।

नोट—उक्त सूत्रमें प्रदेशवचक विषयमें होनेवाले निम्न लेखित प्रश्नोंक क्रिया गया है ।

(१) किसम कारण है ? (२) किम समय होता है ? (३) किस कारणसे होता है ? (४) किस स्वभाववाला है ? (५) किमम होता है और (६) कितनी सम्यावाला है ?

भानार्थ—आत्माक योग-विशेषोंद्वारा त्रिकालमें बंधनवाल, ज्ञानावरणादि कर्म प्रकृतियोंक कारणभूत, आत्माक समस्त प्रदशोंमें व्याप्त होकर कर्मरूप परिणमने योग्य सूक्ष्म, आत्माक प्रदशोंमें क्षीर नीरकी तरह एक होकर स्थिर रहनेवाले, तथा अनन्तानन्त प्रदशोंका प्रमाण लिये प्रदेशमध्यरूपपुद्गल स्कन्धोंको प्रदेशमध्य कहते हैं ॥२४॥

पुण्यप्रकृतिया—

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥ २५ ॥

अर्थ—माता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये पुण्य प्रकृतिया हैं ।

नोट—घातिया कर्मांकी समस्त प्रकृतिया पापरूप है । किन्तु अध्यातिया कर्मांम पुण्य और पाप दोनारूप हैं । उनमसे ६८ प्रकृतिया पुण्यरूप हैं ॥ २५ ॥\*

\* साद तिण्णेत्राज उच्चं णरसुरदुग च पच्चिदी ।

देहा बध्णसत्राद्गोत्रगाह यण्णचओ ॥ ४१ ॥

समचउरउज्जग्मिह उरघादूणगुरुल्लक समगण ।

तसउरसट्टसट्टी वादालमभेद्दा सत्या ॥४१॥ [कर्मशास्त्र]

अर्थ—सातावदनाय तीन आयु, ( त्रियज मनुष्य दर ) उच्च गान, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुष्य देवगति देवगत्यानुष्य पञ्चद्विय जाति, पांच देह, पांच रथन, पांच सभान, तीन अज्ञापात्र, १० यर्गादिक, समचतुरस्र अस्थान, वज्ररथमनाराच सन्नन, उपघातको छउरर अगुण्णु आदि ६ ( अगुण्णु परयात उरुत्थास, आतप, उग्रान )

पापप्रकृतिया—

अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥

अर्थ—इससे भिन्न अर्थात् असातावेदनीय अशुभ आयु अशुभ नाम और अशुभ गोत्र ये पापप्रकृतियाँ हैं × ॥ २६ ॥

प्रथम विशयागति और श्रवका आदि एकर गणह (जम बादर, पर्याप्ति प्रत्यक्ष शरीर स्थिर, शुभ सुमग, सुस्वर, आदय यशस्वीर्ति, प्रमाण और तीक्ष्णत्व) इन तरह भेद विग्रहण ६८ पुण्यप्रकृतियाँ हैं और अभेद विग्रहण ४२ ही हैं, क्योंकि २६ वर्णाधिकी और गणराम अन्तगत हुए ५—वन और ५ सहात इमतरह २६ भेद पानेमे ४२ भेद विग्रहण होती हैं।

× घादा णीचमसाद्, गिरयाऊ गिरयतिरियदुग जादी-  
संटाणसहदीण चदुपणपणर्ग च घण्णचआ ॥ ४३ ॥

उपधादमसगमण, धारदसय च अप्पसत्था हु।

धुदुदय पडि भेद अडणउदि सय दुचदुग्मादिदरे ॥४॥ (कमकाण)

अर्थ—घातिया कर्माती (५+२+२८+ =४७) सैतालीय, गणगोत्र, असातावेदनीय नरकगति, गणगणानुपूर्वी तियक्षगति, तियक्षगन्यानुपूर्वी आदिनी ४ नातिया, ५ संस्थान ५ सहनन वर्णादिक २०, उपजात अप्रगस्त विहायोगति तथा स्थायरज आदि एकर २० (स्थावर सूक्ष्म भयर्षति, साधारण, अस्थिर अशुभ दुःख, दुःस्वर, गणदय और अयशस्वीर्ति)। सप्रकार भेदविग्रहण १०० प्रकृतियाँ और अभेद विग्रहणमे ४२ प्रकृतियाँ पाप रूप हैं। क्योंकि वर्णाधिक २६ भेद पानेमे ४२ भेद रहत हैं। इनमेस सम्यक्मिथ्यात्व और मध्यप्रकृति इन दो का उच नहीं हानस भ विग्रहणमे १८ का उच और १० का उदय हाता ह। इगतरह अभेद विग्रहण ८२ का उच और ८४ का उदय होना है।

नाट—वर्णादि चार अथवा उनक २० भेद पुण्य और पाप भेदों रूप है, इगलिय ये दोनों ही भेदोंमे गिन जात हैं।

इति अष्टम अध्यायः समाप्तः



## प्रभावली ।

- ( १ ) बन्ध किसे कहत है ?
- ( २ ) ज्ञानापरणादि कम किस द्रव्यक भद है ? यदि पुटलक हैं तो दरनेम क्या नहीं आत ?
- ( ३ ) दर्शनमोहनीय कर्मोंने कितने भद है और उनका क्या स्वरूप है ?
- ( ४ ) त्रिषडगतिमे जीवका आकार कैसा होना है ? और वैम होनेम कारण क्या है ?
- ( ५ ) पयाप्ति, अस्थिर, वक्षपभनाराचसहनन, प्रशस्त त्रिहायोगति, और लाभान्तराय इन कर्मोंने लक्षण बतलाओ ।
- ( ६ ) सच कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति बतलाओ ।
- ( ७ ) अपने किये हुए कर्मोंका फल कम भोगना पडता है ?
- ( ८ ) प्रदेशबन्ध किसे कहत है ?
- ( ९ ) फठ द चुफनर बाद कर्मोंका क्या होता है ?
- ( १० ) पाप प्रवृत्तियाँ कितनी है ? गिनाओ ।

## नवम अध्याय ।

समर और निर्नरा तत्त्वका वर्णन ।

समरका गृहण—

आसन्ननिरोधः मवरः ॥ १ ॥

अर्थ—आसन्नका रोकना सो समर हे । अथ त आत्माम जिन कारणोंस कर्मोंका आसन्न होता था उन कारणोंको दूर करदेनेसे जो कर्मोंका आना बन्द होनाता है उसको मवर कहते ह ।

समरक दो भेद हैं—१ द्रव्यमवर ( पुत्रूलभय कर्मोंके आसन्नका रोकना ) ओर भावमवर ( कर्मोंके कारणभूत भावोंका अभाव होना ) ॥ १ ॥

मवरक कारण—

स गुप्तिममितिघर्मानुप्रेक्षापरीपहजयचारित्रैः ॥२॥

अर्थ—वह समर तीन गुप्ति पाच समिति, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीपहोंको जीताता और पाच प्रकारका चारित्र इन छट कारणोंस होता है ।

गुप्ति—समार—भ्रमणक कारणस्वरूप मन, वचन और काय इन तीन योगोंक निग्रह करनेको गुप्ति कहते हैं ।

समिति—जीवोंकी हिंसासे बचनेक लिये यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करनेको समिति कहते हैं ।

धर्म—जो आत्माको समारके दु रोंसे छुटाकर अभीष्टस्थानमें प्राप्त करावे उस धर्म कहते हैं ।

**अनुप्रेक्षा**—शरीरदिक्क स्वरूपका बार बार चिन्तन करनेको अनुप्रेक्षा कहते हैं ।

**परिपहजय**—भूल आदिकी वेदना उत्पन्न होनेपर कर्माँकी निर्जग करनके लिये उसे शान्त भावोंसे सहलेना सो परिपहजय है ।

**चारित्र**—कर्माँके आहतम कारणभूत बाह्य आभ्यन्तर क्रियाओंको रोकनेको चारित्र कहत ह ॥ २ ॥

निर्जरा और स्वरका कारण—

**तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥**

अर्थ—तपस निर्जरा और सर दोनों होत है ।

**नोट १**—तपका दस प्रकारक धर्माँ अतमान होचाने पर भी जो अन्गसे ग्रहण किया है उसका प्रयोजन यह है कि वह सवर और निर्जरा दोनोंका कारण है तथा सरका प्रधान कारण है ।

**नोट २**—यद्यपि पुण्यकर्मका बाध होता भी तपका फल है तथापि तपका प्रधान फल कर्माँकी निर्जरा ही है । जब तपमे कुछ न्यूनता होती है तब उससे पुण्यकर्मका बाध होजाता है, इसलिये पुण्यका बाध होना तपका गौण फल है । जैसे मेली करनका प्रधान फल तो धान्य उत्पन्न होना है और गौण फल फलाल ( प्याँल ) धौरहका उत्पन्न होना ॥ ३ ॥

गुप्तिर लक्षण च भेद—

**सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥**

अर्थ—भलेप्रकारसे अथात् विषयागिलावाको छोडकर मन बचन, कायकी स्वच्छन्द प्रवृत्तिक रोकनको गुप्ति कहत हैं, उसके तीन

में है—१ मनोगुप्ति (मनको रोकना), २ वचनगुप्ति (वचनको रोकना) और ३ कायगुप्ति (शरीरका वशमें करना) ॥ ४ ॥

समितिके भेद—

**ईर्याभाषेपणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥**

अर्थ—सम्यग् ईया,\* (चार हाथ आगे जमीन दखकर चरना), सम्यग् भाषा (हित मित प्रिय वचन बोलना), सम्यग् एपणा (स्निग्ध एक-वार गुद्ध निर्दोष आहार लेना) सम्यग् आदाननिक्षेप, (देस थाल कर किमी वस्तुको उठाना रखना) और सम्यग् उत्सर्ग (जीव रहित स्थानमें मलमूत्र क्षेपण करना) ये पाच समितिके भेद हैं ॥ ५ ॥

दशधर्म—

**उत्तमक्षमामार्द्वार्जवशौचमत्यसयमतपस्त्यागा**

**किञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥**

अर्थ—उत्तम क्षमा (क्रोधकर कारण उपस्थित रहते हुए भी क्रोध नहीं करना), उत्तम मार्द्व (उत्तम कुल, विद्या, बल आदिकर धमड नहीं करना) उत्तम आर्जव (मायाचारका त्याग करना) उत्तम शौच (लोभका त्याग कर आत्माको पवित्र बनाना), उत्तम मत्य (रागद्वेषपूर्वक असत्य वचनोंको छोड़कर हित, मित, प्रिय वचन बोलना), उत्तम मयम (५ इन्द्रिय और मनको वशमें करना तथा छह कायक जीवाकी रक्षा करना) उत्तम त्याग (कीर्ति तथा प्रशुपकारकी वाञ्छासे रहित होकर चार प्रकारका दान देना), उत्तम आकिञ्चन्य (पर पदार्थोंमें ममत्वरूप परिणामोंका त्याग करना) और

\* इय सूत्रमें ऊपरके सूत्रमें सम्यक् पदकी अनुवृत्ति आती है।



अकेला ही भोगता है, कुटुम्बी आदि जन साथी नहीं है, इत्यादि विचार करना सो एकत्वानुप्रेक्षा है ।

अयत्वानुप्रेक्षा—शरीरान्तिसे अपनी आत्माको भिन्न चिन्तन करना सो अन्यत्वानुप्रेक्षा है ।

अशुचित्वानुप्रेक्षा—यह शरीर महा अपवित्र है, खून मास आदिस भग हुआ है, स्नान आदिसे कभी पवित्र नहीं हो सता । इसस सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे पदार्थ भी अपवित्र हो जात हैं । इत्यादि शरीरकी अपवित्रताका विचार करना सो अशुचित्वानुप्रेक्षा है ।

आत्मनानुप्रेक्षा—मिथ्यात्व आदि भागोंसे कर्माका आवरण होता है, आत्म ही सभारका मूल कारण है, इस प्रकार विचार क ना सो आत्मनानुप्रेक्षा है ।

सपरानुप्रेक्षा—आत्माम नरीन कर्माका प्रवृत्त नहीं होन दना सो सपर है । सपरसे ही जीवोंका कल्याण होता है, ऐसा विचार करना सो सपरानुप्रेक्षा है ।

निर्नरानुप्रेक्षा—सविपाकनिर्जरामे आत्माका कुछ भग नहीं होता किंतु अपिपाकनिर्गम ही आत्माका कल्याण होता है, इत्यादि निर्नरक स्वभावका चिन्तन करना सो निर्नरानुप्रेक्षा है ।

लोकानुप्रेक्षा—अनन्त अलोककालक ठीक बीचमें रहनवाले चोन्ट राजु प्राण लोकक आकारादिकका चिन्तन करना सो लोकानुप्रेक्षा है ।

बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा—स्वप्नरूप बोधिका प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है, इस प्रकार विचारना सो बोधिदुर्लभ भावना है ।

धर्मस्वारयात्तन्नुपेक्षा—चिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहा हुआ अहिंसा लक्षणवाला धर्म ही जीवोंका कल्याण करनवाला है। इसके प्राप्त न होनसे ही जीव चतुर्गतिक दुःख सहते हैं, आदि विचार करना मो धर्मस्वारयात्तन्नुपेक्षा है।

नोट—इन अनुपेक्षाओंका चिन्तन करनवाला जीव उत्तमश्रमा आदि धर्मोंको पालता है और परिपणोंको जीतता है। इसलिये इनका कथा दानोंक बीचम किया गया है ॥ ७ ॥

परिपह सहन करनेका उद्देश—

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिसोढव्याः परीपहा ॥८॥

अर्थ—सबके मार्गस च्युत न होनक लिये तथा कर्मोंकी निर्जराके हेतु बाईस परिपह सहन करनेके योग्य है ॥ ८ ॥

बाईस परिपह—

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदशमशक्रनाग्न्यारतिस्वीचर्या-  
निषद्याशय्याक्रोशप्रधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्श-  
मलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानाऽदर्शनानि ॥ ९ ॥

अर्थ—१ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दशमशक्र, ६ नाग्न्य, ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चर्या, १० निषद्या, ११ शय्या, १२ आक्रोश, १३ वध, १४ याचना, १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृण स्पर्श, १८ मल, १९ सत्कार पुरस्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान, और २२ अदर्शन, ये बाईस परिपह हैं।

क्षुधा—क्षुधा ( भूख ) क दुःखको शान्त भावस सह लेना मा क्षुधापरिपहनय है।

तृपा—पिपासारूपी जमिको धैर्यरूपी जलसे शान्त करना तृपा परिपहजय है ।

शीत—शीतकी बदनाको शांतभावोंसे सहना शीतपरिपहजय है ।

उष्ण—गर्मीकी बदनाको शान्त भावोंसे सहना उष्णपरिपहजय है ।

दशमशक—डाग, मन्डल, निन्डू, चिउटी आदिक काटनमें उष्ण हुई बदनाको शान्त भावोंसे सहना सो दशमशक परिपहजय है ।

नाग्न्य—नग्न रहते हुए भी मनम किसी प्रकारका विकार नहीं करना सो नाग्न्य परिपहजय है ।

अरति—अरतिक कारण उपस्थित होनपर भी सयमम अरति अथत् अप्रीति नहीं करना सो अरति परिपहजय है ।

स्त्री—स्त्रियोंक हावभावा प्रवर्तन आदि उपद्रवोंको शांतभावसे सहना, उन्हें दग्ग कर माहित नहीं होना सो स्त्री परिपहजय है ।

चर्था—गमन करते समय ग्वेन्दित्त नहीं होना सो चर्था परिपहजय है ।

निपद्या—ध्याते लिये नियमित कालपर्यंत स्वीकार किय हुए आसनमें च्युत नहीं होना सो निपद्यापरिपहजय है ।

शय्या—विषम कठोर ककरीले आदि स्थानोंमें एक कण्टसे निद्रा लेना और अनक उपर्गा आन पर भी शरीरको चलायमान नहीं करना सो शय्या परिपहजय है ।

आक्रोश—दुष्ट जीवांक द्वारा कहे हुए कठोर शब्दोंको शांत रह लेना सो आक्रोश परिपहजय है ।



वध—तत्राण आदिके द्वारा शरीर पर प्रहार करनेवालेसे भी द्वेष नहीं करना सो वध परिपहत्य है ।

याचना—प्राणोंका वियोग होनेपर भी आहारादिकको नहीं मागना सो याचना परिपहत्य है ।

अन्नाभ—भिक्षाक प्राप्त न होने पर सन्तोष धारण करना सो अन्नाभ परिपहत्य है ।

रोग—अनेक रोग होने पर भी उनकी वेदनाको शांत भावोंसे सह लेना सो रोग परिपहत्य है ।

तृणस्पर्श—चलने समय पायोंमें तृण कण्टक घोंघरक चुभ जानेसे उत्पन्न हुए दुःखको सहना सो तृण स्पर्श परिपहत्य है ।

मलपरिपहत्य—जल्कायिक जीवोंकी हिंसासे बचनके लिये स्नान करना तथा अपने मलिन शरीरको देखकर म्गानि नहीं करना सो मल परिपहत्य है ।

मन्कारपुग्म्कार—अपनेमें गुणकी अधिकता होनेपर भी यदि कोई मन्कारपुग्म्कार न करे तो चित्तम क्लृप्तता न करना सो मन्कार-पुग्म्कार परिपहत्य है ।

प्रना—ज्ञानकी अधिकता होनेपर भी मान नहीं करना सो प्रना परिपहत्य है ।

अज्ञान—ज्ञानदिककी हीनता होनेपर लोगोंक द्वारा क्रिय हुए तिरस्कारको शान भावोंसे सह लेना अज्ञान परिपहत्य है ।

---

१-प्राणायामो सत्कार कर्तव्य है । २-कार्य काल काले समय मन्त्रिया बना ध्याता वा पुग्म्कार है ।

अदर्शन—बहुत समयतक कठोर तपश्चर्या करनेपर भी मुझे श्रवधिज्ञान तथा चारण आदि श्रद्धियोंकी प्राप्ति नहीं हुई इसलिये व्रत धारण करना व्यर्थ है, इसप्रकार अश्रद्धाक भाव नहीं होना सो अदर्शन परिपहजय है ।

नोट—उक्त याइस परिपहोंको सत्प्रेरहित भावोंसे जीत लनेपर मवर होता है ।

किस गुणस्थानम कितने परिपह हाते हैं ?

**सूक्ष्ममापरायच्छब्दस्वगीतरागयोश्चतुर्दश ॥ १० ॥**

अर्थ—सूक्ष्म साम्भ्राय नामक दसों ओर छद्मस्थ वीतराग अर्थात् म्यागहवे उपशातमोह तथा बारहवें क्षाणमोह नामक गुणस्थानम १४ परिपह होते हैं । उनका नाम इस प्रकार है—१ क्षुधा, २ तृषा, ३ गीत, ४ उष्ण, ५ दग्धमशक, ६ चया ७ दग्ध्या ८ वध, ९ अलाम, १० रोग, ११ तृणस्पर्श, १२ मल १३ प्रना और १४ अज्ञान ॥ १० ॥

**एकदश जिने ॥ ११ ॥**

अर्थ—सयोगकेवली नामक तेहवें गुणस्थानम रहनेवाले जिनद्र भगवान्के उपर लिगे हुए १४ परिपहोंमेंसे अलाम, प्रजा और अनानको छोडकर शेष ११ परिपह होते हैं ।

---

१—माद और योगके निमित्तने होनवाली आमपरिणामोंकी तरलमताको गुणस्थान कहत हैं । ये १४ होते हैं—१ मिथ्याश्रुति, २ सासादा, ३ मिथ्य, ४ अगवत सम्मन्त्रि, ५ देशविल ६ प्रमत्तस्यत, ७ अग्रमत्तस्यत ८ अयुर्व-करण, ९ अनिश्चितकरण, १० सूक्ष्मसाम्भ्राय, ११ उपशातमोह १२-२ सयोगकेवली और १४ अयोगकेवली ।

नोट—जिनेन्द्र भगवान्‌क वेदनीय कर्मका उदय होनेसे उसक उदयस होनाले ११ परिपह कहे गये हैं । यद्यपि मोहनीय कर्मका उदय न होनेसे भगवान्‌को क्षुधादिककी वेदना नहीं होती\* तथापि इन परिपहोंका कारण बन्नीय कर्म मौजूद् है इसलिये उपचारसे ११ परिपह कहे गये हैं । वास्तवम उनके एक भी परिपह नहीं होता है ॥ ११ ॥

### वाटरसांपराये सर्वे ॥ १२ ॥

अर्थ—वाटरसांपराय अर्थात् स्थूल कषायवाले छठवेसे नवमें गुणस्थान तक सब परिपह होने हैं । क्योंकि इन गुणस्थानोंम परिपहोंके कारणमून सब कर्मोंका उदय है ॥ १२ ॥

कौन परिपह किस कर्मके उदयमे होता है ?—

### ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥

अर्थ—धना× और अज्ञान ये दो परिपह ज्ञानावरण कर्मके उदयस हाते हैं ॥ १३ ॥

### दर्शनमोहात्तराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

अर्थ—दर्शनमोहनीय और अन्तर्गायकर्मका उदय होन पर क्रमस अर्शा और अलग परिपह होने हैं ॥ १४ ॥

\* यन्तोय कर्म माह्नाय कर्मकी गति पारर ही दुःखका कारण हाना दे स्वप्न नहीं ।

। × ज्ञानावरण कर्मका उ व ज्ञानपर जो बाधा जान प्रकट हाता है पर अहंकारका पैदा करता है । ज्ञानावरणका नाश हो जानपर अहंकार नहीं हाता । इसलिये प्रज्ञा परिपह भी ज्ञानावरण कर्मके उदयस माना ट ।

## चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्वीनिपद्याक्रोशयाचना- सत्कारपुरस्कारा' ॥ १५ ॥

अर्थ—चारित्रमोहनीय कर्मका उदय होने पर नाम्न्य, अरति, स्वी, निपद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार ये ७ परिपह होने हैं ॥ १५ ॥

## वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥

अर्थ—शेषक ११ परिपह ( क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, तद्ग्र-  
मशक, चय्या, शय्या, वध, रोग, तृणम्पर्श और मल ) वेदनीय कर्मक  
उदयसे होत हैं ॥ १६ ॥

एकमाथ हानेवाले परिपहोंको सज्या—

## एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशते. ॥ १७ ॥

अर्थ—( युगपत् ) एकसाथ ( एकस्मिन् ) एक जीवमं  
( एकादय ) एकको आदि लेकर ( आ एकोनविंशते ) उन्नीस  
परिपहतक ( भाज्या ) विभक्त करना चाहिये ।

भानार्थ—एक जीवके एक कालमें अधिकसे अधिक १०  
परिपह होसकते हैं क्योंकि शीत और उष्ण इन दो परिपहोंमेंसे एक  
कालमें एक ही होगा तथा शय्या चय्या और निपद्या इन तीनमें  
भी एक कालमें एक ही होगा । इसप्रकार ३ परिपह कमकर न्य  
गये हैं ॥ १७ ॥ \*

\* यहां काइ प्रश्न करसकता है कि प्रजा और अज्ञान भी एकसाथ  
तीनों हांग इसलिये १ परिपह और कम करना चाहिये । पर वह प्र-  
तीक नहीं है क्योंकि एक ही कालमें एक ही जीवके भुतशानादिभी नारा  
प्रजा और अवयिमानादिक्की अपरा अज्ञान रह सकता है ।



# मंवरतत्त्वके ५७ भेद ।

## संघर

गुप्ति	+	सम्मिति	+	ध्रम	+	अनुपेक्षा	+	परिपहस्य	+	कारित्र
१ कायगुप्ति	१	१ ईर्ष्या	१	१ उत्तम क्षमा	१	१ अनिष्य	१	१ धुष्या	१	१ सामाजिक
२ वागुप्ति	२	२ नापा	२	२ मादव	२	२ आग्लण	२	२ मृषा	२	२ उदापस्यापत्ता
३ मनोगुप्ति	३	३ मण्डा	३	३ आनव	३	३ मंगार	३	३ नीत	३	३ परिहारविद्युदि
	४	४ आदाननिक्षेपण	४	४ शीघ्र	४	४ प्रकाव	४	४ उष्ण	४	४ मृमतामराव
				५ मय	५	५ अन्वय	५	५ देग्मनाक	५	५ यथाज्यात
				६ सयम	६	६ अगुणित	६	६ नाग्य	६	
				७ तप	७	७ आर्य	७	७ अरति	७	
				८ त्याग	८	८ संवर	८	८ छा	८	
				९ आक्षिप्रय	९	९ निजरा	९	९ चर्षा	९	
				१० प्रसन्नय	१०	१० लोक	१०	१० निपत्या	१०	
					११	११ वाधितुलभ	११	११ गत्या	११	
					१२	१२ ध्रम	१२	१२ अर्दगीत	१२	



निर्जगतचक्रा वर्षण ।

बाह्य तप—

अनशनावमोर्दर्यवृत्तिपरिमरणरमपरित्यागवि-  
विकल्पामनकायकेशा बाह्य तपः ॥ १९ ॥

अर्थ—१ अनशन ( सपनकी वृद्धि के लिये चार प्रकारक आहारका त्याग करना ), २ अवमोर्दर्य ( रागभाव दूर करनेके लिये भुखसे कम भोजन करना ), ३ वृत्तिपरिमरण ( भिक्षाको जाने समय घा, गली आदिका निषण करना ), ४ रमपरित्याग ( इन्द्रियोंका दमन करनेके लिये घृत दुग्ध आदि रमोंका त्याग करना ) ५ विविक्तश्रमामन ( स्वाध्याय ध्यान आदिका सिद्धिके लिये एकान्त तथा पवित्र स्थानमें सोना बैठना ) और ६ कायकेश ( शरीरसमन न रक्क आताप योग आदि धारण करना ) ये बाह्य तप हैं । ये तप बाह्य द्रव्योंकी अपक्षा होने ह तथा बाह्यमें समके दुखनेमें आन हैं इसलिये बाह्य तप कहे जाते हैं ॥ १९ ॥

आभ्यन्तर तप—

प्रायश्चित्तविनयवैशानृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गिणा  
नान्युत्तरम् ॥ २० ॥

अर्थ—१ प्रायश्चित्त ( प्रमाद अधमा अज्ञानसे लगे हुए दोषोंकी शुद्धि करना ), २ विनय ( पूज्य पुरुषोंका आदर करना ), ३ वैशानृत्य ( शरीर तथा अय वस्तुओंस मुनियोंकी सेवा करना ), ४ स्वाध्याय ( ज्ञानकी भावनामें आलस्य नहीं करना ), ५ व्युत्सर्ग ( बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग करना ) और ६ ध्यान





समय तक सपने पृथक् कर देना ) और उपस्थापन ( सम्पूर्ण दीक्षाक  
छेद कर फिगस त्वीन दीक्षा देना ), ये ९ प्रायश्चित्त तपके भेद हैं ।  
यह प्रायश्चित्त सपके आचार्य देने हैं ॥ २२ ॥

विनय तपके ४ भेद—

### ज्ञानदर्शनचारित्र्योपचाराः ॥ २३ ॥

अर्थ—१ ज्ञान विनय ( आदरपूर्वक योग्यकालम शास्त्र पठन  
अभ्यास करना, आदि), २ दर्शन विनय ( दृष्टा काक्षा आदि दोष  
रहित सम्यग्दर्शनको धारण करना ) ३ चारित्र्य विनय ( चारित्र्यको  
निर्दाप रीतिम पालना ) और ४ उपचार विनय ( आचार्य आदि  
पूज्य पुरषोंको देखकर खंड होना, नमस्कार करना आदि ) ये चार  
विनय तपके भेद हैं ॥ २३ ॥

वैयावृत्य तपके १० भेद—

### आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलमघमा- धुपनोज्ञानाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल,  
सह, साधु और मनोज्ञ इन १० प्रकारके मुनियोंकी सेवा छल करण  
सो आचार्यवैयावृत्य आदि १० प्रकारका वैयावृत्य है ।

आचार्य—जो मुनि पचाचारका स्वय आचरण करत और  
दृमोंको आचरण करत है उन्हें आचार्य कहते हैं ।

उपाध्याय—जिनके पास शास्त्रोंका अध्ययन किया जाता हो  
वे उपाध्याय कहलाने हैं ।



व्युत्सर्ग तपके २ भेद—

वाद्याभ्यतरोपधोः ॥ २६ ॥

अर्थ—यद्यद्योपधि-व्युत्सर्ग ( धनधायादि बाह्य पदार्थाका त्याग करना ) और आभ्य-तरोपधि-व्युत्सर्ग ( मोघमान आदि स्वाटे भावोंका त्याग करना ), ये दो व्युत्सर्ग तपके भेद हैं ॥ २६ ॥

ध्यान तपका लक्षण—

उत्तमसहननस्येकाग्रचित्तानिरोधा ध्यानमातर्मु-  
हूर्त्तात् ॥ २७ ॥

अर्थ—(उत्तमसहननस्य) उत्तम सहनननालेका (आन्तर्मु-हूर्त्तात्) अन्तर्मुहूर्त्तवर्न्त (एकाग्रचित्तानिराव) एकमतास चित्तका रोकना (ध्यानम्) ध्यान है ।

भावाये—किमो एक विषयमें चित्तको रोकना सो ध्यान है । यह उत्तम सन्तनधारी जीवोंके ही होता है और एक पदार्थका ध्यान अ-भूर्मुहूर्त्तस अधिक समय तक न होना ॥ २७ ॥

ध्यानके भेद—

आर्तौद्रघर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥

अर्थ—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये ध्यानके चार भेद हैं ॥ २८ ॥

परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥

अर्थ—इनमेंसे धर्म और शुक्लध्यान मोक्षके कारण हैं ।

१-वर्षभनाराच, उग्रनाराच और नाराच ये तीन मूढ़ना उत्तम ध्यानके धामे जीवोंके ही ध्यान



गुणस्थानांकी अपेक्षा आतव्यानवे स्वामा—

तदविरतदेशविरतममत्तमयतानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—यह आर्तध्यान अविरत अथत् आत्तिक्रुचर गुणस्थान, दशविगत अथत् पञ्चम गुणस्थान और ममत्तमेयत् अर्थत् छठवें गुणस्थानमें होता है ।

नोट—छठवें गुणस्थानमें निदान नामका आर्तध्यान नहीं होता है ॥ ३४ ॥

रौद्रध्यायके भेद व म्गामी ।

हिमानृतस्तेयविषयसरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-  
देशविगतयोः ॥ ३५ ॥

अर्थ—हिमा, वृत्, चोरी और विषय संधानमे उत्तर हुआ ध्यान रौद्रध्याय कहलाता है और वृत् अविरत तथा दशविगत (आदिके पाच) गुणस्थानोंमें होता है ।

भारार्थ—निमित्तके भेदसे रौद्रध्यान चार प्रकारका होता है । १ हिमानदी ( हिंसाम आनन्द मानकर उसीक साधन जुटानेमें तलीन र ना ) २ मृपानन्दी ( अमत्य वाचनम आनन्द मानकर उमीका चित्तमन करना ) , ३ चौर्यानिन्दी ( चोरोंमें आनन्द मानकर उसीका चिन्तवन करना ) और ४ परिग्रहानदी ( परिग्रहकी रक्षाकी चिन्ता करना ) ॥ ३५ ॥

१-भूत परिणामोंक होते हुए जो व्याप होता है उसे रौद्र ध्यान



निवर्ति ये दो शुद्धध्यान सयोगकेवली और अयोगकेवली ही होने हैं । \* ॥ ३८ ॥

शुद्धध्यानके चार भेदके नाम—

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातव्युपरतक्रियानिवर्तानि ॥ ३९ ॥

अर्थ—पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, ओप्युपरतक्रियानिवर्ति ये शुद्धध्यानके चार भेद हैं ॥ ३९ ॥

शुद्धध्यानके आलम्बन—

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उक्त चार भेद क्रमस तीनों योग एक योग काययोग और योगरहित जीर्णोक्त होने हैं अथत् पहल पृथक्त्ववितर्कध्यान मन वचन काय इन तीनों योगोंके धारक होता है । दूसरा एकत्ववितर्कध्यान तीन योगोंमें क्रिमी एक योगके धारकके होता है । तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यान सिर्फ काययोगके धारकके होता है और चौथा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यान योगरहित जीर्णोक्त होता है ॥४०॥

\* पहला भेद सातिगुण अप्रमत्त नामके सातव शुद्धध्यानमें स्वरूपधर्म शुद्धध्यान तक ३७ है इसमें मोक्षनीय क्रमका उपगम अथवा धय होता है । दूसरा भेद सात्त्विक शुद्धध्यानमें हाता है । मन भाव सातिगुणधर्मका धय होकर केवलज्ञान प्राप्त होता है । तीसरा भेद वैश्व शुद्धध्यानमें अत समर्पण हाता है । इसमें ७२ प्रकृतियोंका नाश होकर चौदहवां शुद्धध्यान प्राप्त होता है । और चौथा भेद कीद व शुद्धध्यानमें होता है । इसमें भाव १३ प्रकृतियोंका धय होकर भाव प्राप्त हाता है ।





छोड़कर उसकी पर्यायको ध्याव और पर्यायको छोड़कर द्रव्यको ध्याव से अर्थमत्कान्ति है ।

व्यञ्जनसंक्रान्ति—श्रुतक एक वचनको छोड़कर अन्यका अवलम्बन करना और उसे छोड़ किमी अन्यका अवलम्बन करना से व्यञ्जनसंक्रान्ति है ।

योगसंक्रान्ति—काययोगको छोड़कर मनोयोग या वचन योगको ग्रहण करना और उहे छोड़कर किमी अन्य योगको ग्रहण करना से योगसंक्रान्ति है ॥ ४४ ॥

पात्रही अपेक्षा निर्जगामे न्यूनाधिकताका घणन—

सम्यग्दृष्टिश्चावकविरतानतत्रियोजकदर्शनमो-  
हक्षपकोपजामकोपगातमोहक्षपक्षीणमोहजिना  
रुमशोऽपरयेयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥

अर्थ—१ सम्यग्दृष्टि २ पञ्चगुणस्थानरती श शक, ३ कित (गुनि), ४ अनन्तानुरधीकी त्रिमयोचना करनेवाला, ५ दर्शनमोहका क्षप करनेवाला, ६ चारित्रमाहका उपग्रम करनेवाला, ७ उपशान्त मोहवान, ८ क्षपकप्रेणि चन्ता हुआ, ९ क्षीणमाह (बाह्यवे गुण स्थानराग ) और १० जिनन्द्र भगवान् न सत्त [अन्तर्बुद्धि पर्यन्त परिणामोंकी विगुहनाकी अधिकत मे आयुर्कर्मको छुटकर ] प्रतिगमय ब्रह्मस असन्वयतगुणा निर्जरा होती है ॥ ४५ ॥

निर्ग्रन्थ मायुभावे भेद—

पुलास्वकुशकुशीलनिर्ग्रन्थातका निर्ग्रन्थाः ॥४६॥

अर्थ — पुत्राक, वसुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाच प्रकारक निर्ग्रन्थ साधु हैं ।

पुत्राक — जो उत्तरगुणोंकी भावनासे रहित हो तथा किसी क्षेत्र व कालम मूलगुणोंमें भी दोष लगावें उट्टे पुत्राक कहते हैं ।

वसुश — जो मूलगुणोंका निर्दोष पालन करते हां परंतु अपन शरीर व उपरगुणादिकी शाभा बढानकी कुछ इच्छा रखते हों उट्टे वसुश कहते हैं ।

कुशील मुनि दो प्रकारके होते हैं—एक प्रतिसेवनाकुशील और दूसरा कपायकुशील ।

प्रतिसेवनाकुशील—जिनके उपकरण तथा शरीरादिस विरक्तता न हो और मूलगुण तथा उत्तरगुणकी परिपूर्णता हे परंतु उत्तर गुणोंमें कुछ विधना दोष हो उन्हें प्रतिसेवनाकुशील कहते हैं ।

कपायकुशील—जिन्होंने सज्वलनके सिवाय अन्य कपायको जीत लिया उन्हें कपायकुशील कहते हैं ।

निग्रन्थ—जिनका मोक्षकर्म क्षीण होगया हो ऐंम सारथें गुणस्थानवर्ती मुनि निग्रन्थ कहलाते हैं ।

स्नातक—ममस्त घातिया कर्माका नाग कनवाला कनला भगवान् स्नातक कहलाते हैं ॥ ४६ ॥

पुत्राकादि मुनियामें विशेषता—

सयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थान-  
विकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

अर्थ—उक्त मुनि—सषम, श्रुत, प्रनिसैरना, तीर्थ, लिङ्ग, लेश्या, उपपाद और स्थान इन आठ अनुयोगोंक द्वारा भेदरूपसे साध्य हैं। अर्थत्—इन आठ अनुयोगोंक पुलाक आत्ति मुनियोंके विशेष भेद होने हैं ॥ ४७ ॥

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते माहतास्त्र नवमोऽध्यायः ॥

## प्रश्नावली ।

- ( १ ) मररर कारण क्या हैं ?
- ( २ ) गुप्ति और समितिम क्या अतर है ?
- ( ३ ) परिषद् किस लिय सहन करना चाहिये ? एक साथ कितन परिषद् हो सकत हैं ?
- ( ४ ) प्रायश्चित्त तपक भेद लक्षण सहिन गिताओ ।
- ( ५ ) क्या मररर रिना भी निर्जरा हो सकती है ?
- ( ६ ) गुह्यथानक भेदोंका वर्जन कर उनर लक्षण बताओ और कौन भेद कष होता है ? उसका क्या कार्य है ? यह भी बताओ ।
- ( ७ ) पुलाक मुनि पूज्य हैं या अपूज्य ?
- ( ८ ) रौद्रध्यानी जीर मरकर कहा जाता है ?
- ( ९ ) आचकल ध्यान हो सकता है या नहीं ?
- ( १० ) ध्यानकी सिद्धिक उपयोगी कुछ रिम बताओ ।

## दशम अध्याय ।

मोक्षतत्त्वका वर्णन ।

केवलज्ञानकी उत्पत्तिका कारण\*—

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणानरायक्षयाच्च केवलम् । १ ।

अर्थ—मोहनीय कर्मका क्षय होनेसे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त क्षीण क्षय नामक राग्हवां गुणम्यान पार न रादमे एकमात्र चानारण, दर्शनारण और अन्तगम्य कर्मका क्षय होस केवल न उत्पन्न होता है ।

भारार्थ—चार घातिया कर्मांसा सर्वा क्षय होजानेपर केवलज्ञान होत है ।

नोट—घातिया कर्मांसा सप्त पहले मोहनीय कर्मका क्षय होता है, इसलिये सूत्रम गौरव होनपर भी उसका पृथक् निर्देश किया है ॥ १ ॥

मोक्षके कारण और लक्षण—

बधहेत्वभावनिर्जराभ्या कृत्स्नकर्मनिप्रमोक्षो

मोक्षः ॥ २ ॥

अर्थ—बधक कारणोंका अभाव तथा निर्जराके द्वारा चानारण आदि समस्त कर्मप्रवृत्तियोंका अत्यन्त अभाव होना मोक्ष है ।

भारार्थ—आत्मामे समस्त कर्मोंका सम्बन्ध छूट जाना मोक्ष है और बध सङ्ग तथा निर्जराके द्वारा प्राप्त होता है ॥ २ ॥

माक्षमे कर्मोंके सिवाय और विसरना अभाव होता है ?

औपशमिकादिभगत्वाना च ॥ ३ ॥

\* भेद केवल ज्ञानप्राप्त होना है, इसलिये मोक्षके पहले केवलज्ञानकी उत्पत्तिका वर्णन किया है ।

अर्थ—मुक्त जीवरू औपशान्तिक आदि भावोंका तथा पारि  
णामिक भावोंमसे भेयत्व भावका भी अभाव होनाता है ।

अन्यत्र केवलमभ्यक्तवज्ञानदर्शनमिद्वत्वेभ्यः ॥४॥

अर्थ—केवलमभ्यस्तव, केवलज्ञान, केवलदर्शन और मिद्वत्त्व  
इन भावोंको छोड़कर मोक्षम अथ भावोंका अभाव होनाता है ।

भार्यार्थ—मुक्त अवस्थाम जीवरु नामक परिणामिक भाव  
और कर्मोंके क्षयसे प्रकट होनेवाले आत्मिक भाव रहते हैं, मोक्ष  
अभाव होजाता है ।

नोट—चिन गुणोंका अनन्ततानादिक साथ म्दमद च्च है  
ऐस अनन्तरीर्य, अनन्तसुख आदि गुण भी पाय च्च है २. २. २.

वर्माका क्षय हा के बाद—

तदनतरमूर्ध्व गच्छत्यालोकतान् ॥ ५ ॥

अर्थ—समस्त कर्मोंका क्षयहोनरु बाद इन वि च्च  
भाग पर्यन्त ऊपरको जाता है ॥ ५ ॥

मुक्त जीवके ऊपरगमने के बाद—

स्वभाव होनेसे मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है ॥ ६ ॥

उक्त चारा कारणोंके क्रमसे चार दृष्टान्त—

आविद्धकुलालचक्रमद्वयपातलेपालाबुधरडवी-  
जयदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥

अर्थ—( १ ) मुक्तजीव कुम्भकारक द्वारा घुमाये हुए चाककी तरह पूर्वप्रयोगसे ऊर्ध्वगमन करता है । अथत् निम्नप्रकार कुम्भकार चाकको घुमाकर छाड़ देता है तब भी चक्र पहलके भंगे हुए वेगके बशमें घूमता रहता है, उसी प्रकार जीव भी समान अस्थायी मोक्षसाक्षिण लिये चार बार अभ्यास करता था, मुक्त होनपर यद्यपि उसका वह अभ्यास छूट जाता है, तथापि वह परलोक अभ्याससे ऊपरको गमन करता है । ( २ ) मुक्तजीव, दूर हो गया है ले। निम्नका एंस तूबेकी तरह ऊपरको जाता है । अथत् तूबेका जवनक मिट्टीका एण रहता है तबतक वह बचनदार होनस पानीमें डूबी रहती है पर ज्योंही उसकी मिट्टी गलकर दूर होजानी है त्योंही वह पानीसे ऊपर आ जाती है । इसी प्रकार यह जीव जवनक कर्मलक्ष्म मलिन होता है तबतक समारम्भमुद्रम दृष्य रहता है पर ज्यों ही स्वका कर्मलक्ष्म दूर होता है त्यों ही वह ऊपर उठ कर लोफक ऊपर पान जाता है । ( ३ ) मुक्त जीव कर्मबन्धसे मुक्त होनके कारण परलोक बीजम समान ऊपरकी जाता है । अथत् परण्ड वृक्षका सूखा बीज जब चटकता है तब उसकी मिट्टी निम्न प्रकार ऊपरको जाती है उसीप्रकार यह जीव कर्मोंका बन्धन दूर होने पर ऊपरका जाता है । और ( ४ ) मुक्त जीव स्वभाव ही अग्निही शिलाकी तरह ऊर्ध्वगमन

रूम्न है अथत् जिसप्रकार हवाके क्षमावमें अग्नि ( दीपक आदि)की प्रिया उष्णकी जाती है उसी प्रकार कर्मोंके बिना यह जीव भी उष्ण को जाता है ॥ ७ ॥

लोकप्रभे आगे नहीं जानेमें कारण—

**धर्मास्त्रिकायाभावात् ॥ ८ ॥**

अर्थ—धर्मद्रव्यका अभाव होतासे मुक्त जीव लोकप्रभे आगे अर्थात् अग्रेकाकार्म नहीं जाते । क्योंकि जीव और पुद्गलोंका पपन धर्मद्रव्यकी सहायतासे ही होता है । और अलोकाकार्ममें धर्म-द्रव्यका अभाव है ॥ ८ ॥

मुक्त जीवोंमें भेद होनेके कारण—

**क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकमुद्धवोधित-  
ज्ञानावगाहनांतरसख्याल्यबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥**

अर्थ—क्षेत्र, काल, गति, लिङ्ग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकमुद्धवोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, सख्या, और अल्पबहुत्व, इन चारों अनुयोगोंसे सिद्धोंमें भी भेद साधने योग्य है ।

भावार्थ—क्षेत्र—कोई भूखण्डसे, कोई ऐरावतक्षेत्रसे, और कोई विदेहक्षेत्रसे सिद्ध हुए हैं । इस प्रकार क्षेत्रकी अपेक्षा सिद्धोंमें

\* लोकके अतमें ४१ लाख योग्य विभारवाही सिद्धशिष्य हैं, मुक्त जीव उनके पीछे उड़र जाते हैं । मोक्षमें मुक्त जीवोंके धार एक वास स्थान पर रहते हैं ।

१—सहस्रवर्षी अर्थात् अर्थात् क्षीण-मात्रसे-मुक्त-होते हैं ।



भेद होता है । काले—कोई उत्सर्पिणीकालमें सिद्ध हुए हैं और कई अग्रमर्पिणीकालमें । गति—कोई सिद्ध गतिसे और कोई मनुष्य गतिसे सिद्ध हुए हैं । लिङ्ग—रास्तामें अलिङ्गसे ही सिद्ध होते हैं अथवा द्रव्यपुलिङ्गसे ही सिद्ध होते हैं । मात्रलिङ्गकी अपक्षा तीनों लिङ्गोंसे मुक्त होसके हैं । तीर्थ—कोई तीर्थद्वर होकर सिद्ध होत है, कोई बिना तीर्थद्वर हुए सिद्ध होते हैं । कोई तीर्थकरके कालमें सिद्ध होत हैं और कोई तीर्थद्वरके मोक्ष चले जानेके बाद उनके तीर्थ (आज्ञाय)में सिद्ध होते हैं । चारित्र—चारित्रकी अपक्षा कोई एकसे अथवा कोई भूपूर्व नयकी अपक्षा दो तीन चारित्रसे सिद्ध हुए हैं । प्रत्येक-बुद्धबोधित कोई स्वयं समारसे विरक्त होकर मोक्षको प्राप्त हुए हैं और कोई निमीक उपदेशसे । ज्ञान—कोई एक ही ज्ञानमें और कोई मृतपूर्व नयकी अपक्षा दो तीन चार ज्ञानसे सिद्ध हुए हैं ।

अवगाहना—कोई उत्कृष्ट अवगाहना पाचसौ पचीस धनुषसे सिद्ध हुए हैं । कोई मयम अवगाहनासे और कई जपन्य अवगाहना कुछ कम सौते तीस हाथसे सिद्ध हुए हैं । अन्तर एक सिद्धमें दसों सिद्ध होनेका अन्तर जपन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे आठ समयका है तथा गिरिकाल जपन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे छ माहका होता है ।

१-अवसर्पिणीसे सुप्रमादुप्रमा नामक तीसरे कालके अन्तिम भागमें उत्कृष्ट सुप्रमा नामक चौथे काल तक उत्पन्न हुए और ही मुक्त होत हैं । चौथे कालका उत्पन्न हुआ और पंचम कालमें मुक्त होसकता है पर पंचमका पैदा हुआ पंचमसे मुक्त नहीं होसता । २-भावदका उदय नयम गुण स्थान तक रहता है इसलिये माघ अर्धे दशममें ही होता है । ३-मृत काशी बातकी यत्नमान्न कदनवाशा ।

संख्या जघनसे एक समयमें एक ही जीव सिद्ध होता है। और उल्लृष्टनासे १०८ जीव सिद्ध होमके हैं। जल्पनहत्व-समुद्र आदि जल क्षेत्रासे बड़े सिद्ध होते हैं और विदेहादि क्षेत्रोंसे अधिक सिद्ध होते हैं। इमप्रकार सिद्ध जीवोंमें बाह्य निमित्तकी अपेक्षा भेदकी कल्पना की गई है। वास्तवमें आत्मीय गुणोंकी अपेक्षा कुछ भी भेद नहीं रहता ॥ ९ ॥

॥ इति धीमनुमास्यामिबिरचिते मोक्षतास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥

दोस्य वृत्त—

अक्षरमात्रपदस्वरहीन व्यञ्जनसधिविवर्जितरेफम् ।  
साधुभिरत्र मम क्षन्तव्य को न विमुह्यति शास्त्र  
समुद्रे ॥ १ ॥

अर्थ—इस शास्त्रमें यदि कहीं अक्षर मात्रा पद वा स्वर रहित हो तथा व्यञ्जन सधि व रेफसे रहित हो तो सज्जन पुस्त्य गुणे ह्यम करे। क्योंकि शास्त्र रूपी समुद्रमें कौन पुस्त्य मोहको प्राप्त नहीं होता अथत् भूल नहीं करता ॥ १ ॥

अनुदुर्—

दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्रार्थे पठिते सति ।

फल स्वादुपवासस्य भाषित मुनियुङ्गवैः ॥ २ ॥

अर्थ—दश अध्यायोंमें विभक्त इस तत्त्वार्थभूत (मोक्षशास्त्र) के पाठ करनेसे भेद मुनियोंने एक उपवास्का फल कहा है।

भार्य—जो पुरय भावपूर्वक पूर्ण मोक्षशास्त्रना पाठ करता है उसे एक उपवासका फल लगता है ।\* ॥ २ ॥

## प्रश्नावली ।

- ( १ ) घातिया कर्मोंमें सयमे पढ़ने किसका क्षय होता है ?
- ( २ ) क्या ब्रह्मज्ञानके विना भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है ?
- ( ३ ) मोक्षका क्या लक्षण है ?
- ( ४ ) 'सरकर्मविप्रमोक्ष' इस शब्दमें वि, प्र शब्दका क्या अर्थ होता है ?
- ( ५ ) मोक्षमें जीवोंका आकार कैसा होता है ?
- ( ६ ) जब कि भयत्वभाव पारिणामिक भाव है तब सिद्ध अयस्थाम उभका अभाव क्यों होता है ? यदि भयत्वका अभाव होता है तो जीवत्वका भी अभाव क्यों नहीं होता ?
- ( ७ ) मुक्त जीवान् भेद किमप्रकार होता है ?
- ( ८ ) जीवका उर्ध्वगमन क्यों होता है ? उदाहरण सहित समझाओ ।
- ( ९ ) मुक्त जीव सिद्ध शिलासे आग क्यों नहीं जाते ?
- ( १० ) मुक्त जीवोंको मध्य लोकमें मोक्षस्थान तक पहुँचानमें कितना समय लगता है ?
- ( ११ ) 'जो जीव मोक्षमें रहते हैं उन्हें मुक्त कहते हैं' यदि मुक्त जीवोंका यह लक्षण माना जाये तो क्या हानि होगी ?

# लक्षण-संग्रह ।

शब्द	अर्थ	सूत्र	शब्द	अर्थ	सूत्र
	[ अ ]		अधिकरण	६	६
अकामनिर्हरा	६	१२	अधुव	१	१६
अक्षिप	१	१६	अधोव्यतिक्रम	७	३०
अगारी	७	२०	अतर	१	८
अगृहीत निभ्यादर्शन	८	१	अनिमृत्व	"	१६
अप्राप्तिया	"	४	अनुक्त	"	"
अद्भोगान्	"	११	अनुगामी अरुध्द्वान	"	२२
अचक्षुर्दृश	"	७	अनुगामी	"	"
अचौर्णुनन	७	२०	अनप्रस्यित	"	"
अनीत्र	१	४	अनीक	४	४
अज्ञातभाव	६	६	अनर्पित	५	३२
अज्ञा	८	१	अनाभोग	६	५
अज्ञान परीपहनय	९	९	अनाकांक्षा	"	"
अण्डन	२	२३	अनुमा	६	८
अणु	५	२१	अनाभोगनिक्षेपाधिकरण	६	९
अणुव्रत	७	२	अन्तराय	६	१०
अतिधिसविभाग व्रत	"	२१	अनुप्रापिभ्रमण	७	५
अतिचार	"	२३	अनृत-असत्य	"	१४
अतिभारारोपण	"	२५	अनगारी	"	२० टि०
अदर्शन परीपहनय	९	९	अनुर्थदण्डव्रत	"	२१
अधिगमन सम्यग्दर्शन	१	३	अन्यदृष्टिप्रससा	"	२३
अधिकरण-क्रिया	६	५	अज्ञानानिरोध	"	२५

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
अनङ्गमीडा	७	२८	अप्रत्यवेक्षिताप्रभा		
अनादर	"	३३	जितोत्सर्ग ७		३४
अनादर	"	३४	अप्रत्यवेक्षिताप्रभा		
अनुभागबन्ध	८	३	वितादान ७		३४
अन्तराय	"	४	अप्रत्याख्यानावरण		
अनुनीविगुण	"	४ टि०	को मा मा लो ८		९
(टिप्पणी) अनन्तानुबन्धी			अपर्याप्त नामकर्म ८		११
को मा मा लो	"	५	अपर्याप्तक	"	"
अन्तर्मुहूर्त	"	२० टि०	अपायत्रिचय	५	२६
अनुभवबन्ध	"	२१	अनह-कुशील	७	१६
अनुप्रेक्षा	५	२	अभिनिबोध	५	४३
अनित्यानुप्रेक्षा	"	७	अभद्रण ज्ञानोपयोग	६	२४
अन्यत्मानुप्रेक्षा	"	"	अभिपवाहार	७	३५
अनशन	"	१९	अगनम्क	२	११
अनुप्रेक्षा	५	२५	अयश कति	८	"
अनिष्टमयोगज आत			अरति	"	९
ध्यात ५		३०	अरति परिपहजय	९	"
अनघ प्रियोपक	"	४५ टि०	अर्थ सन्नाति	"	४४
अन्तर	१०	९	अथ विग्रह	१	१८
अप्रत्याख्यान	६	५	अर्पित	५	३२
अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपा			अहङ्कति	६	२४
धिकरण ६		५	अल्पबहुत्व	१	८
अपभ्रान	७	२१	अलाम परीपहजय	९	५
अपरिगृहीतेत्तरिका			अल्पबहुत्व	१०	५
गमन ७		२८			

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
अत्रधिज्ञान	१	९	आत्रोश	९	९
अवमद	"	१५	आचार्यभक्ति	६	२४
अवाय	"	"	आचार्य	९	"
अवस्थित	"	२२	आज्ञा व्यापादिकी	६	५
अविमह्वती	२	२७	आज्ञाविचय	९	३६
अवणराद्	६	१३	आत्मरक्ष	५	४
अविरति	८	१	आतप	८	११
अवधिनागावरण	"	६	आदाननिक्षेपण		
अवधि दशनावरण	"	७	समिति	७	४
अत्रिपाक निर्भरा	"	२३	आदय	८	११
अवमौदय	५	१०	आदाग निक्षेप	९	५
अवगाहन	१०	९	आनया	७	३१
अनुभयोग	६	३	आनुवर्त्य	८	११
अगरणानुप्रेक्षा	५	७	आभियोग्य	४	४
अशुचित्वापुप्रेक्षा	"	"	आभ्यन्तरोपधि		
अशुभ	८	११	व्युत्सग	५	२६
अभिनचाय	५	१ टि०	आम्नाय	"	२५
अममी व्याधिकरण	७	३२	आय	३	३६
अमद्वय	८	८	आरम्भ	६	८
अमप्राप्तसुराट्टिका स	८	११	आर्तव्याग	५	३३
अस्थिर	"	"	आलोकित पानमोत्रन	७	४
अहिमाणुजन	७	२०	आलोचना	९	२२
			आरदयका परिहाणि	६	२४
[ आ ]			आसादन	६	१०
आत्रन्वन	६	११			

शब्द	अध्याय	श्लोक	शब्द	अध्याय	श्लोक
आसन	१	४	वैतन सत्य	१	६
आसनानुप्रेक्षा	१	७	" सत्यम	"	"
आसन	६	१	" तप	"	"
आहार	२	२७	" त्याग	"	"
आहारक'	२	३६	" आर्चिन	"	"
	[ इ ]		" मन्त्रचर्य	"	"
इष्टनियोगज्जार्तध्यान	१	३१	वस्तुग	"	५
इन्द्रिय	२	१४	उदय-औदयिक भाव	२	१
इन्द्र	४	४	वद्योन	८	११
	[ ई ]		उपशम औपशमिकभाव	२	१
इर्यापथ आसन	६	४	उपयोग	२	८
इर्यापथक्रिया	"	५	उपकरण	"	१७
इशासमिति	७	४	उपयोग	"	१८
ईर्ष्या	१	५	उपपाद जन्म	"	३१
इहा	१	१५	उपकरण सयोग	६	१
	[ उ ]		उपघात	"	१०
उच्छ्वास	८	११	उपभोग परिभोग		
उच्च गोत्र	"	१२	परिमाणत्रय	७	२१
उत्सृपिणी	३	२७	उपघात	८	११
उत्पाद	५	३०	उपस्थापन	१	२२
उत्तम क्षमा	१	६	उपचार विनय	"	२३
" माद्व	"	"	उपाध्याय	"	२४
" आर्जव	"	"		[ ऊ ]	
" शीघ	"	"	उपवेद्यतिक्रम	७	३०

शब्द	अध्याय	धन	शब्द	अध्याय	खन
[ ऋ ]			काल	१	८
ऋजुमति मा पयय	१	२३	कामेण शरीर	२	२६
ऋजुसूत्र	१	३३	काययोग	६	१
[ ए ]			कायिकी क्रिया	६	१
एकविध	१	१६	कारित	"	८
एकान्त मिथ्यात्व	८	१	काय निसर्ग	"	७
एकत्वानुप्रेक्षा	९	७	कारण्य	७	११
एस्त्वयितर्क	"	४२	कांक्षा	"	२२
एवभूत नय	१	३३	कामतीक्ष्णाभिनिवेश	"	२८
एषणासमिति	९	५	काययोग दुःप्रणिधान	"	२५
[ औ ]			कालातिक्रम	"	२६
औशमिक सम्यग्त्वं	२	३	कायश्लेश	९	१५
औपशमिक चारित्र	"	"	काल	१०	९
[ क ]			कित्तिवपक	४	८
कर्मयोग	२	२५	क्रिया	५	२२
कर्मभूमि	३	३७	कीलक सहनन	८	११
कल्पोपपन्न	४	१७	कुण्ड प्रमाणातिक्रम	७	२८
कल्पातीत	"	"	कुञ्ज सस्थान	८	१०
कल्प	"	२३	कुल	९	२५
कपाय	६	४	कुमाल	"	१६
कृत्	"	८	कूटनेत्र क्रिया	७	६
कन्दप	७	३२	कृत्	६	८
कपाय	८	१	कमलज्ञा	१	९
कपाय कुशौल	९	४६	कमलज्ञान	२	५



शब्द	अध्याय	श्लो	शब्द	अध्याय	श्लो
कवलवदन	२	४		[ ग ]	
कवलीजा अरणराद	६	१३	गर्म जन्म	२	३१
कवल ज्ञानावरण	८	६	गतिनाम कर्म	८	११
कवल श्रीनारण	"	७	गन्ध	"	"
काध प्रत्याख्यात	७	५	गण	९	२४
कौडाकोडी	८	१४ टि०	गति	१०	९
कौतुच्य	७	१२	ग्लान	९	२०
	[ क्ष ]		गुणप्रत्यय	१	११
क्षय-श्यायिकभात्र	२	१	गुण	५	३८
अयोपक्षम-क्षयोपश			'	"	३४
मिक भात्र	२	१	"	"	४१
अयोपक्षम दानादि	"	४	गुणप्रत	७	२० टि०
श्यायिक सम्यक्त्व	'	'	गुति	९	२
श्यायिक चारित्र	"	'	गुणस्थान	"	१० टि०
अयोपक्षमिक सम्यक्त्व,,		७	गृहीत मिथ्यात्व	८	१
' चारित्र ,,		'	गोत्र	"	४
शान्ति	६	१७		[ घ ]	
स्त्रिप्र	१	१६	घातियाकम	८	४
शुधापरीपह जय	९	९		[ च ]	
शत्र	१	८	चतुदशनारण	८	७
'	१०	५	चयोपरीपह जय	९	२
अत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम	७	२९	चारित्र	"	"
श्रेयवृद्धि	"	३०	चारित्र वितय	"	२३

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
चारित्र	१०	९	तप	९	२०
विना	१	१३	तपाव्री	,	२५
[ छ ]			ताप	६	११
छेद	७	२५	तियश्च	५	२७
छेदोपस्थापना	९	१८	तियोग्यतिक्रम	७	३०
छेद	"	२२	तीक्ष्णमात्र	६	६
[ ज ]			तीक्ष्णरत्न	१	११
जप य गुणसहित			तीक्ष्ण	१०	५
परमाणु	५	३४	तृपा परीपहनय	९	,
जरायुत	२	२२	तृणस्पर्श परीपहनय		,
जाति नामकम	८	३१	तृणस शरीर	०	३६
जीव	१	४	[ न ]		
जीविनाशता	७	३७	त्रम	२	१४
जुगुप्सा	८	९	त्रम	८	१
[ झ ]			त्रावत्विश	४	४
ज्ञान भाव	६	६	[ द ]		
ज्ञानोपयोग	२	९ टि०	दशतोपयोग	२	९ टि०
ज्ञानावरण	८	४	दर्शन क्रिया	६	५
ज्ञाधिपय	५	२३	दशाग्निबुद्धि	,	२४
ज्ञान	१०	९	दर्शनावरण	८	४
[ त ]			दणनत्रिय	९	२३
तदाहतादात	७	१७	दणमशक परीपहनय	"	९
तदुभय	९	२२	द्रव्य	१	५
तममोहराद्ग निरीक्षण			द्रव्याधिकारय	"	६
त्याग	७	७			

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
द्रुचेन्द्रिय	२	१७	धर्मानुप्रेक्षा	९	७
द्रव्य	५	२९	धर्मादरुण	"	२५
द्रव्यविशेष	५	३९	धारणा	१	१५
द्रव्य सवर	९	१	ध्याता	९	२०
दातृविशेष	७	३९	"	"	२७
दानान्तराम आदि	८	१३	धुन	१	१६
दान	७	३८	धौज	५	३१
दासीदास-					
प्रमाणातिक्रम	७	२९	[ न ]		
दिग्गत	"	२१ टि०	नय	१	५
दु प्रभृष्ट			गुमनवद	८	५
निक्षेपधिकरण	६	९	नरकायु	"	१०
दु र	"	११	नरकगत्यानुपूर्व्य आदि	"	११
दु श्रुति	७	२१	गाम	१	५
दु स्वर	८	११	"	८	४
दुर्भग	"	"	नाराय सहाता	"	११
दुष्पकाक्षर	७	३५	गान्य परीपहनय	९	९
देव	४	१	निसर्गज सम्यग्दर्शन	१	३
देवता अवणनाद	६	१३	निर्नरा	"	४
[ घ ]			निक्षेप	"	५
घनधान्य			निर्देश	"	७
प्रमाणातिक्रम	७	२९	निरस्तुत	"	१६
धर्मका अरर्णनाद	६	१३	निरुति	२	१७
धम	९	२	निश्चय काल द्रव्य	५	४०
			निसर्ग क्रिया	६	५

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
निर्वर्तना	६	९	परोपरोधाकरण	७	६
निक्षेप	"	"	परिगह	"	१७
निमग	"	९	परिमद्परिमाण घन	"	२०
निह्न	"	१०	परित्रिगहकरण	"	२८
निदान शस्य	७	१८	परिगृहीतत्परिकागमन	"	"
निदान	"	३७	परव्यपदेश	"	३६
निद्रा	८	७	परघान	८	११
निद्रानिद्रा	"	"	परीपठ जय	९	२
निर्माण	"	११	परिहारगिबुद्धि	"	१८
निर्वृत्त्यरणीतिक	८	११ टि०	परिहार	"	२०
निर्जरानुप्रेथा	९	७	परिगृहानन्दी रीद्रघ्यान	"	३५
निपतापरीपूजय	"	९	परन्वापरत्व	५	२०
निदान आर्तध्यान	"	३१	पर्याप्तिक	८	११ टि०
निगथ	"	४६	पर्याप्ति नामकर्म	८	११
नीचगोत्र	८	१०	पर्याय	५	३२
नैगम नय	१	३३	पर्यायाधिक नय	१	६
न्यासापहार	७	२६	प्रमाण	१	५
न्यमोत्र परिमण्डल			प्रत्यक्ष प्रमाण	"	६
सस्थान	८	११	प्रकीर्ण	४	४
[ प ]			प्ररीरार	"	७
परोक्षप्रमाण	१	६	प्रदेश	५	८
परिणाम	५	२२	प्रदोष	६	१०
परिणाम-पर्याय	"	४२	प्रवचन भक्ति	"	२४
परिदेवन	६	११	प्रवचनवृत्तल्लय	"	"

शब्द	भाष्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
प्रमोद	७	११	प्रायश्चित्त	९	२०
प्रमादचया	"	२१	प्रायोग क्रिया	६	१
प्रतिरूपक व्यवहार	"	२७	प्रादोषिकी क्रिया	"	"
प्रमाद	८	१	पारितापिकी क्रिया	"	"
प्रकृतिरन्ध	"	३	प्राणातिपातिकी क्रिया	"	"
प्रदशबन्ध	"	"	प्रात्ययित्री क्रिया	"	"
प्रतिजीविगुण	"	४	प्रारम्भ क्रिया	"	"
प्रचला	"	७	पुषेद	८	९
प्रचलाप्रचला	"	"	पुद्रल	५	२२
प्रत्याख्यानान्तरण			पुद्रलक्षेप	७	२४
त्रा मा मा लो	"	९	पुण्य	६	५
प्रत्यक्ष शरीर	"	११	पुरस्कार	९	८
प्रदक्षिण	"	२४	पुण्यक	"	४६
प्रजापरीपहजय	९	९	पूर्वतानुस्मरणयाग	७	७
प्रतिव्रमण	"	२२	पृथक्प्रवितक	९	१
प्रच्छिन्ना	"	२५	प्रेषप्रयोग	७	२१
प्रतिसेवना वुशील	"	४६	पोत	२	२५
प्रत्यकबुद्धनीधिन	१०	९	प्रोपधोवत्रास	७	२१
पारिषद	४	४			
पाप	६	३			
पारितापिकी क्रिया	"	५	वकुश	९	२६
पारिमहिकी क्रिया	"	५	बन्ध	१	४
पापोपदश	"	२१ टि०	बन्ध	५	२३
पात्रविशेष	"	३९	बन्ध	७	२५
			बन्धन	८	२

[ २ ]

शब्द	भाष्य	सूत्र	शब्द	अंश	पृष्ठ
शब्धन	८	११		[ म ]	
बहु	१	१६	मतिज्ञान	१	८
बहुविध	"	"	मतिज्ञान	१	८
बहुभुवमक्ति	६	२७	मति	१	१०
बादर	८	११	मनिज्ञानावरण	८	६
बालनप	६	१०	मात्रभर	६	६
बाह्योपधियुत्सर्ग	५	२६	मनादिमा		१०
बोधिदुलभानुप्रेक्षा	"	७	मनोना गुप्ति	७	७
	[ म ]		मनोयाग दुष्प्रणिधान		८
भक्तपानसयोग	६	५	मन पयस्य ज्ञान	१	७
भय	७	५	मन पयस्य ज्ञानावरण	८	६
भयप्रत्यय	१	५	मनाइ	५	२७
भाव	१	५	मरणाशमा	७	६७
भावन	१	८	मठपरीक्ष जय		५
भाषात्रिय	२	१८	महाव्रत	७	२
भाषना	७	२	भाषात्रिया	६	
भाषसर	५	१	मात्मय		७
भाषासमिति	"	५	मागप्रभाषना		"
भीरुद्व प्रत्याख्यान	७	"	मायस्य	७	११
भूतघ्नयनुकम्पा	६	१५	मायाशक्त्य	"	१८
भैरवगुद्धि	७	६	मात्मय		"
			मिथ्यात्त्व क्रिया		

ग्रन्थ	अध्याय	सू.	शब्द	अध्याय	सू.
मिथ्योपदेश	७	२६	रस	८	११
मिथ्याद्वय	८	१	रस परित्याग	९	१९
मिथ्यात्वप्रकृति	"	९	रहोभ्याख्या	७	२६
मुक्त	७	१०	रूपानुगत	"	३१
मुक्त	८	१८ टि०	रोग परीपहजय	९	९
मूलगुणनिर्वर्तना	६	९	[ ल ]		
मूर्च्छा	७	१७	लडि	२	१८
मृषातदी रीद्राया	९	३५	लडि	"	४७
मैत्री	७	११	लडय पयाप्तक	८	११ टि०
मोक्ष	१	४	लिङ्ग	१०	९
"	१०	२	लेडया	२	६ टि०
मान्नीय	८	४	लाफपाल	४	४
मौग्य	७	३७	लोमानुप्रेक्षा	९	७
मृश	३	३६	लोभ प्रत्याख्या	७	५
[ य ]			लोमान्तिक दन	५	२४
यथाग्यान चारित्र	८	९	[ व ]		
यथाग्यान चारित्र	९	१८	वर्धमान	१	२१
यज्ञ कीर्ति	८	११	वर्तना	५	२०
याचना परीपहजय	९	९	वचायोग	६	१
याग	६	१०	वज्रनाराय सद्दत्ता	८	११
"	८	१	वज्रनाराय सद्दत्त	"	"
योग सक्रान्ति	९	४४	वध	"	११
[ र ]			व्रत	७	१
रति	८	९	वध	"	२५

शब्द	अध्याय	मूल	शब्द	अध्याय	सूत्र
वण	८	११	त्रिचित्त शय्यासन	९	१९
वाङ्निर्गम	६	९	वीर्यभात्र	६	६
वाग्गुप्ति	७	४	वीचार	९	४४
धामनसस्थान	८	११	वृत्तिपरिमत्यान	"	१९
वाग्यागदुष्प्रणिधान	"	३३	वृष्येष्टरमत्याग	७	७
वाचना	९	२५	वदनीय कर्म	८	४
विधान	१	७	वेदनाजन्य आतध्यान	९	३०
विपुलमति	"	२३	वैत्रियिक शरीर	२	३६
विमदगति	२	२५	वैमानिक	४	१६
विमदवती	"	२७	वैयानृत्यकरण	६	२४
विमृतयोनि	"	३०	वैयानृत्य	९	२०
विमान	४	१६	वैयनयिक मिथ्यात्व	८	१
विदारणक्रिया	६	५	व्यञ्जनावग्रह	१	१८
विसवादन	"	२२	व्यवहारनय	"	३३
विनयसपन्नता	"	२४	व्यय	५	३०
विमोचितावास	७	६	व्युत्सर्ग	९	२०
विचित्रित्ता	"	२३	"	"	२२
विनय	९	२०	व्युपरत्तक्रियानिर्वर्ति	"	४३
विबक	"	२२	व्यञ्जनसक्रान्ति	"	४४
विपाकविचय	"	३६	[ श ]		
विरुद्ध राज्यातिक्रम	७	२५	शब्दनय	१	३३
विधिविशेष	७	३९	शक्तित्तत्याग	६	२४
विपरीत मिथ्यात्व	८	१	शक्तित्तस्तप	"	"
विद्वान्गोमति	८	१०		७	१८



शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
शब्दानुपात	८	३१	सपहनय	१	३३
शरीर नामकम	८	११	समभिरुद्ध जय	"	"
शय्यापरीपह जय	९	९	सयमासयम	२	५
शक्रा	७	३३	ससारी	"	१०
शिक्षाव्रत	"	२१ टि०	समनस्क	"	११
शीलव्रतप्यनतीचार	६	२४	सहा	२	२४
शीतपरीपह जय	९	९	सम्बुच्छन जन्म	"	३१
शुभोपयोग	६	३	सचित्तयोनि	"	३२
शु-यागारवास	७	६	सतृणयोनि	"	"
शैक्ष्य	९	२४	समुद्घात	"	१६ टि०
शोक	६	११	समय	५	४४
"	८	९	सम्यक्त्व त्रिया	६	५
शौच	६	१२	समादान "	"	"
श्रुत	१	९	सत्	५	३०
श्रुतका अवर्णवाद	६	१२	समन्तानुपात त्रिया	६	५
श्रुनहानापरण	८	६	समरम्भ	६	८
श्रेणि	२	२५	सप्तरम्भ	"	१
			सहसा निक्षेपाधिकरण,,		९
[ स ]			सयोग "	"	"
सम्यग्ज्ञान	१	१	सराग सयमादियोग	"	१२
सम्यक्चारित्र	"	"	सघना अवर्णवाद	"	१३
सम्यग्दर्शन	"	२	सवेग	"	२४
सत्र	"	४	सधर्मा त्रिसम्वाद	७	६
सत्	"	८	सत्याणुव्रत	"	२०
सहा	"	१३			

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
संलक्षणा	७	२२	सत्या	१०	९
सचित्ताहार	"	३५	साधन	१	७
सचित्त सम्बन्धाहार	"	"	सामानिक	४	४
सचित्त समिन्धाहार	"	"	साम्परायिक आन्वय	६	"
सचित्त निक्षेप	"	३६	साधुसमाधि	"	२४
सशय मिथ्यात्व	८	१	सामायिक	७	२१
सद्वैराग्य	"	८	साकार मात्रमद	"	२६
सम्यङ्मिथ्यात्व	"	९	साधारण शरीर	८	११
सम्यङ्मन क्रो मा			सामायिक	९	१८
या लोभ	"	"	साधु	"	२४
सघात	"	११	मुग्धानुबन्ध	७	३७
संस्थान	"	११	सुभग	८	११
समचतुरस्र संस्थान	"	"	सुस्वर	"	"
सहनन	"	"	सूक्ष्म	"	"
सविपाकनिर्जरा	"	२३	सूक्ष्मसाम्पराय	९	१८
सवर	९	१	स्थापना	१	५
समिति	९	१	स्थामित्व	"	७
ससारानुप्रेक्षा	"	७	स्थिति	"	"
सवरानुप्रेक्षा	"	"	स्पर्शन	"	८
सत्कार पुरस्कार			स्मृति	"	१३
परीपहजय	"	९	स्थावर	२	"
सत्कार	"	"	स्वयं	५	२५
सघ	"	२४	स्पर्शा क्रिया	६	५
संस्थान	"	३६	स्वहस्त क्रिया	"	"

शब्द	अध्याय	श्रुत	शब्द	अध्याय	सूत्र
स्त्रीरागकथाश्रयणत्याग	७	७	क्षीपरीपद्मजय	९	९
स्वशरीरसंस्कार त्याग	७	१	स्वाध्याय	१	२०
स्तय-चारी	७	१५	स्त्यानन्दी रौद्रध्यान	७	३५
स्तनप्रयोग	७	२७	स्नातक	७	४६
स्मृत्यन्तराधान	७	३०	[ ह ]		
स्मृत्यनुपस्थान	७	३३	हाम्य प्रत्याख्यान	७	५
”	७	३४	हास्य	८	९
स्थितिवन्ध	८	३	हिरण्य सुवर्ण प्रमाणा		
त्यागगृहि	७	७	तिक्रम	७	२९
स्त्रीवद्	७	९	हिंसा	७	१३
स्वरूपाचरण चारित्र	७	९	हिंसादान	७	२१
स्वाति सस्थान	७	११	हिंसानन्दी रौद्रध्यान	९	३५
ऋश	७	११	हीनाधिकमानोन्मान	७	३७
श्रावण नामकम	७	११	हीयमान अवधि	१	२१
स्यर	७	११	हुण्डक सस्थान	८	११



दा० माणिकचन्द दि० जैन परीक्षालय, मुम्बईका

## तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) का प्रश्नपत्र ।

समय ३ घण्टा ]

[ ता० २४-४-४१ ]

- १—नय और निक्षेपमें अन्तर बताकर, ऋजुसूत्र और एरभूतनयमें अन्तर बताओ ? अयोपशमनिमित्तक अवधिमानक भेद लिखकर यह भी बताओ कि मतिज्ञानको सञ्चा और झूठा बतानेमें क्या कारण है ? १५
- २—आयोपशमिक्रभावका लक्षण लिखकर यह बताओ कि लेश्या औदयिकी क्या है ? आहारक शरीरका स्वरूप लिखकर यह भी लिखो कि अकालमृत्यु किनकी नहीं होती है ? १५
- ३—जम्बूद्वीपका नक्रशा बनाकर उसमें मेरुपर्वत, तिर्गिळहद, शिप्य रिणीपर्वत और रत्तोदा नदीको दिखाओ ? ग्लेच्छोम तुम क्या समझते हो । १२
- ४—तामामिक और आभियोग्य देवोंका लक्षण लिखकर यह बताओ कि सर्वार्थसिद्धि और लौकिक देवोंमें जघन्य स्थिति क्या है ? भवनवासियोंकी कुमार सज्ञा क्यों है ? १५

अथवा

लोकाकाशके प्रदेश बताकर यह बतलाओ कि एक जीव किनन आकाशमें रहता है ? भेद और सघातसे तुम क्या समझत हो ? असातावेदनीय और दर्शन मोहनीयक क्या हैं

- ५—सद्वैयनाका लक्षण लिखकर परिग्रहपरिमाणव्रत व भोगोपभोग परिमाणव्रतमें भेद बताओ ? प्रकृति और प्रदशबन्ध क्या है ? १२
- ६—ध्यान और सामायिकका लक्षण लिखकर पुलाकादि मुनियोंका स्वरूप लिखो ? सिद्ध जीवार्थ भद क्यों है, परीषद्दोक भद लिखकर धरति और अदर्शनका लक्षण लिखो ? १४
- ७—निम्न सूत्रोंका विशदार्थ लिखो ?  
 अर्थस्य, निरुपभोगमत्यम्, द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा , स यथा  
 ताम, और प्रितर्क श्रुतम् ? १२  
 शुद्धता और सफाईक लिए ५



अ० भा० दि० जैन परिषद् परीक्षाबोर्डका

## मोक्षशास्त्र पूर्णका प्रश्नपत्र ।

समय ३ घण्ट ] २७ जनवरी १९४१ [ पूर्णांक १००

परीक्षक — श्री सुशालचन्द्र जैन, साहित्याचार्य, एम० ए०

नोट - अन्तरे ३ और आदिके ४ मेंसे कोई तीन प्रश्न कीजिये ।

कुल ६ प्रश्न करो ।

- १ सात तत्व, तीन जन्म, उत्पाद, व्यय, भ्रौव्य और चार बन्ध इनमेंसे किन्हीं १० की परिभाषायें लिखो । १४
- २ धारित्रमोक्षनीयके आश्रयका कारण यतात दूर पाँचों अणुजनोंका स्वरूप लिखो तथा यह भी समझाओ कि वे कौनसी भावनाएँ हैं जो ब्रह्मचर्यको दृढ़ बनाती हैं । १४
- ३ नीचे लिखे सूत्रोंमेंसे किसी धारको सरल हिंदीमें समझाओ । १४
  - (क) सदसतोरत्रिशेषाद्यदृच्छोपलन्धेरमत्तवत् ।
  - (ख) सर्वस्य ।
  - (ग) तिर्यग्योनिजानां च ।
  - (घ) न द्वा ।
  - (ङ) प्रायश्चित्तविनयवैयाघृत्यस्त्राध्यायश्रुत्सगन्धानान्युत्तम् ।
  - (च) धर्मास्तिवायाभावात् ।
- ४ बन्धके कारण, गृहस्थकी परिभाषा और चोरीका लक्षण लिखो ।

- ५ मोक्षशास्त्रमे क्या बताया है यह पूछे जानेपर आप साधा व्यक्तिको क्या उत्तर देंग ? उत्तर प्रत्येक अध्यायक सा समझाता हो ।
- ६ मोक्षशास्त्रको बनानेवाल आचार्यजीक धावत आप क जानत हैं ।
- ७ निम्नलिखित रिषयोंमेंसे किसी एकपर निराच लिखिए । २
- (क) साधारण शिष्टाचार ।
- (ख) शारीरिकतया मानसिक अवस्थापर शुद्ध भोजनका प्रभा
- (ग) माताकी जबाबदारी
- (घ) शिशुपालन ।
- (ङ) गृहिणीकी आदर्श दिनचर्या ।
- (च) लौकिक और पारलौकिक जीवनमे सम्यग्दर्शनक उपयोगिता ।
- (छ) कर्मसिद्धान्त ।
- (ज) मनुष्य और धार्मिक शिक्षा ।
- (झ) में जैन धर्मको उत्तम धर्म
- नाम — सुंदर







